स्त्रियों के लिये कर्तव्यशिक्षा

श्रीजयदयाल गोयन्दका

मूल्य सैंतीस पैसे

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

स्त्रियोंके लिये कर्तव्यशिक्षा

लेखक—

जयदयाल गोयन्दका

Shant Sharma Hiremath

222
C.

निवेदन

भारतीय आर्य-संस्कृतिमें स्त्रियोंका स्थान बड़े ही महत्त्वका है। आर्यशास्त्रोंने स्त्रियोंको जितना ऊँचा स्थान दिया है, उनकी मर्यादाका जितना विचार किया है, साथ ही उनके जीवनको संयम तथा सेवासे अनुप्राणितकर जितना पवित्रतम बनानेकी चेष्टा की है, आदर्श माता, आदर्श भगिनी, आदर्श पत्नी, आदर्श सती, आदर्श त्यागमयी, आदर्श संयममयी, आदर्श सेवामयी, आदर्श बलिदानमयी, आदर्श वीराङ्गना, आदर्श लोकहितैषिणी, आदर्श राजनीतिनिपुणा, आदर्श कार्यकुशला, आदर्श गृहिणी और आदर्श पतिव्रता निर्माण करनेकी जितनी शिक्षा दी है, वह परम आदर्श है और जगत्‌के इतिहासमें सर्वथा विलक्षण और अनुकरणीय है।

हमारी आर्यसंस्कृतिमें किस प्रकारकी आदर्श महिलाएँ हुई हैं, स्त्रियोंका क्या कर्तव्य है, उनका आचार-व्यवहार किस प्रकारका होना चाहिये, इन सब बातोंपर संक्षेपसे इस 'स्त्रियोंके लिये कर्तव्यशिक्षा' नामक पुस्तकमें विचार किया गया है और बड़ी सुन्दरताके साथ उनके कर्तव्यका प्रतिपादन किया गया है।

इसमें आये हुए पतिव्रता शुभा, पतिव्रता सुकला, द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद, पतिव्रता शाण्डिली, पतिव्रता सावित्री, पतिव्रता दमयन्ती, सती लोपामुद्रा और माता कुन्ती आदिके इतिहास आर्य-स्त्रीके पवित्रतम चरित्र, उसके त्याग-बलिदान, उसके उच्चातिउच्च जीवनका बड़े मधुर, साथ ही गगनभेदी गम्भीर स्वरमें गौरव-गान कर रहे हैं।

आज भारतकी स्त्री जहाँ एक ओर अज्ञानसे मूर्छित है, वहाँ दूसरी ओर भोगमयी सभ्यता और शिक्षाकी नाशकारी मदिरासे उन्मत्ता है। दोनों ही दशाएँ घोर तमका आवरण विस्तारकर उसके पवित्रतम आदर्शोंको नष्ट कर रही हैं। इस अवस्थामें उसे सात्त्विक प्रकाश प्राप्त हो और वह मूर्छासे जागकर तथा मदिराके मदसे छूटकर अपने पवित्र स्वरूपको सँभाले, इसकी बड़ी आवश्यकता है। यह पुस्तक अपने मधुर प्रकाशसे इस तमका बहुत अंशोंमें विनाश करनेमें समर्थ होगी, ऐसी आशा है।

मैं अपनी सभी भारतीय बहिनोंसे निवेदन करता हूँ कि वे इस पुस्तकको पढ़कर ध्यानसे मनन करें और इससे लाभ उठावें। सभी पवित्र तथा सुखी जीवन और सुखी गृहस्थ चाहनेवाले भाइयोंसे भी निवेदन है कि वे इस पुस्तकको स्वयं पढ़ें और घरमें माता, बहिन, पुत्री तथा पुत्र-वधुओंको भी पढ़ावें।

विनयावनत

हनुमानप्रसाद पोद्दार

68

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

स्त्रियोंके लिये कर्तव्यशिक्षा

व्यवहार

प्रत्येक स्त्रीको उचित है कि वह अपने नैहर और ससुरालमें सबके साथ बहुत ही उत्तम व्यवहार करे। व्यवहार करते समय नीचे लिखी तीन बातोंका खयाल रखनेसे व्यवहार शीघ्र ही बहुत उच्चकोटि-का हो सकता है।

(१) व्यवहार करते समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये, जैसे गोपियाँ हर समय भगवान्‌को याद रखती हुई ही घरके सारे काम-काज किया करती थीं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥
(१० । ४४ । १५)

'जो गौओंका दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दही बिलोते समय, आँगन लीपते समय, बालकोंको पालनेमें झुलाते समय, रोते हुए बच्चोंको लोरी देते समय, घरोंमें जल छिड़कते समय और झाड़ू देने आदि कर्मोंको करते समय प्रेमपूर्ण चित्तसे आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद वाणीसे श्रीकृष्णका गान किया करती हैं, इस प्रकार सदा श्रीकृष्णमें ही चित्त लगाये रखनेवाली ये व्रजवासिनी गोपरमणियाँ धन्य हैं ।'

(२) जिसके साथ व्यवहार किया जाय, अपना स्वार्थ छोड़कर उसके हितकी दृष्टिसे किया जाय ।

(३) दूसरोंके सच्चे गुणोंका तो वर्णन किया जाय, पर अवगुणोंकी चर्चा न की जाय ।

इस प्रकारका आचरण करनेसे व्यवहारका भी सुधार होता है और सबके साथ प्रेम भी बढ़ता है । घरमें जो अपनेसे बड़ी अवस्थावाले स्त्री-पुरुष हों, श्रद्धापूर्वक उनकी आज्ञा पालनेकी चेष्टा और सेवा करनी चाहिये तथा उनके चरणोंमें नित्य नमस्कार करना चाहिये । स्त्रीको पतिके तो पैर छूकर प्रणाम करना चाहिये और पतिके सिवा दूसरे पुरुषोंको हाथ जोड़कर दूरसे भूमिमें मस्तक लगाकर प्रणाम करना चाहिये। अपने समान वयवालोंको आदर-सत्कारपूर्वक निःस्वार्थ प्रेमभावसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करनी चाहिये और अपनेसे जो छोटे हैं, उनका जिस प्रकार हित हो, इसका विशेष ध्यान रखते हुए वात्सल्यभावसे पालन करना चाहिये । बालकोंके गुण, स्वभाव और चरित्र अच्छे बनानेके लिये अपना उत्तम-से-उत्तम चरित्र उनके सामने रखना और उसी प्रकारकी उन्हें शिक्षा देनी चाहिये । माताके उपदेशकी अपेक्षा

भी उसके आचरणका असर बालकोंपर अधिक पड़ता है। बालकोंके लिये प्रथम गुरु माता ही है। श्रीतुलसीदासजीकी रामायणमें देखिये, सुमित्राने अपने पुत्र लक्ष्मणके प्रति कैसा उत्तम उपदेश दिया है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥

× × ×

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

× × ×

सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

× × ×

जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

वाल्मीकीय रामायणमें भी प्रायः इसी प्रकार कहा है—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥
(२।४०।९)

'बेटा! तुम इच्छानुसार सुखपूर्वक वनमें जाओ। श्रीरामको पिता दशरथ समझना, सीताको माता (मुझे) समझना और वनको अयोध्या समझना।'

इसी प्रकार राजा ऋतुध्वजकी धर्मपत्नी मदालसा एक बड़ी उच्च-कोटिकी विदुषी स्त्री थी। उसकी कथा मार्कण्डेयपुराणमें विस्तारसे

जाती है, वहाँ देखनी चाहिये। अपने पुत्रोंको उसने बचपनमें ही ज्ञानका उपदेश देकर ज्ञानी बना दिया था।* मदालसाका यह उद्देश्य था कि मेरे गर्भमें आये हुए बालकको यदि पुनः दूसरी माताके गर्भमें जाकर जन्म लेना पड़े तो उस बालकको प्रसव करना मेरे लिये लज्जाकी बात है!

स्त्रियोंको चाहिये कि घरवालों और बाहरके सभी मनुष्योंके साथ बर्ताव करते समय वाणीका संयम रक्खे। अश्लील, गंदे, कटु, व्यङ्गभरे, हिंसात्मक और व्यर्थ शब्द न बोलकर परिमित, सत्य, प्रिय और हितके ही वचन कहने चाहिये। शब्दोंका प्रयोग उत्तम अर्थ और भावयुक्त होना चाहिये। इसका असर सभीपर अच्छा पड़ता है और अपना हित भी इसीमें है। अपने द्वारा किसीकी भी हिंसा न हो, बल्कि सबके साथ निःस्वार्थ प्रेम हो, इस भावको हृदयमें रखते हुए प्रेम और विनय-युक्त सरलताका व्यवहार करना चाहिये। जो वर्ण, आश्रम, पद, अवस्था, जाति, गुण, आचरण, ज्ञान—किसी भी दृष्टिसे पूज्य और बड़ा हो

---

* मदालसा अपने बालकको इस प्रकार कहा करती—

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम
कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति
नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः॥
(मार्कण्डेयपुराण २३। ११)

'हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है, तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतोंका बना हुआ है। न यह तेरा है, न तू इसका है; फिर किसलिये रो रहा है?'

उसकी निःस्वार्थभावसे आदरपूर्वक सेवा और उसे नमस्कार करना चाहिये। परपुरुषोंके तो दर्शन, भाषण, स्पर्श, एकान्तवास और चिन्तन-का सर्वथा त्याग करना चाहिये। विशेष आवश्यक कार्य होनेपर बड़ेको पिताके समान, बराबरवालेको भाईके समान और छोटेको पुत्रके समान समझते हुए नीची दृष्टि रखकर थोड़े शब्दोंमें आवश्यकतानुसार नीति और धर्मयुक्त बात करनी चाहिये। पद्मपुराणमें बतलाया है—

सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम्।
मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता॥

(सृष्टि० ४७। ६०)

'जो साध्वी स्त्री सुन्दर वेषधारी भी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता अथवा पुत्र मानती है, वह पतिव्रता है।'

स्त्रियोंको शौचाचार, सदाचार और अन्तःकरणकी पवित्रतापर विशेष ध्यान देना चाहिये। शरीर और घरकी सफाई आदि सब शौचाचारके ही अङ्ग हैं तथा सबके साथ उत्तम व्यवहार करना सदाचार है। शौचाचार और सदाचार—ये दोनों ही अन्तःकरणकी पवित्रतामें बहुत ही सहायक हैं। काम-क्रोध, लोभ-मोह, अभिमान-अहंकार, राग-द्वेष, मद-मत्सर आदि दुर्गुणोंका अभाव एवं पूर्वसंचित पापोंका नाश ही अन्तःकरणकी पवित्रता है। अतः इसके नाशकी विशेष चेष्टा रखनी चाहिये। आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और व्यावहारिक शिक्षाकी पुस्तकोंको स्वयं पढ़ना और बालकोंको भी पढ़ाना चाहिये।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि विषयक गीता, रामायण, भागवत आदि आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, पराशरस्मृति आदि धार्मिक ग्रन्थ हैं। विदुरनीति, चाणक्यनीति,

शुक्रनीति आदि नैतिक पुस्तकें हैं। इन पुस्तकोंमें तथा महाभारत आदि इतिहास और पद्मपुराण आदि पुराणोंमें सामाजिक और व्यावहारिक बातोंका भी जगह-जगह वर्णन आता है। घरमें सब लोग एकत्र होकर यदि एक घंटा भी इन ग्रन्थोंके सुनने-सुनानेका प्रबन्ध कर लें तो सभी लोगोंको शास्त्रोंका अनुभव स्वाभाविक ही अनायास हो सकता है।

स्त्रियोंको चाहिये कि शरीरसे हर समय काम लेती हुई अपने जीवनको परिश्रमजीवी बनावें। आटा पीसना, रसोई बनाना, चौका-बर्तन करना आदि गृहकार्योंको कर्तव्यबुद्धिसे धैर्य और उत्साहके साथ करें एवं चर्खा कातना, कपड़े सिलाई करना आदि शिल्पकार्य भी अवश्य करें। ऐसा करनेसे बल, बुद्धि, आरोग्य, उत्साह, शरीर और मनमें प्रसन्नता तथा स्फूर्ति बढ़ती है। ये सब कार्य उन्हें लड़कियोंको भी सिखलाने चाहिये तथा आलस्य, प्रमाद, दुर्गुण, दुराचार, अश्लीलता, मादक वस्तुओंका सेवन, बुरे व्यसन, नाटक-सिनेमा, थियेटर, क्लब, खेल-तमाशा, तास, चौपड़, शतरंज, फिजूल-खर्ची और कुरीतियोंका भी कतई त्याग करना चाहिये। डोरा-यन्त्र, ताबीज, टोना, जात-झडूला आदिको मिथ्या वहम समझकर इन कामोंसे स्त्रियोंको बचकर रहना चाहिये। स्त्रीके लिये लज्जा ही भूषण है, अतः लोक और शास्त्रकी मर्यादापर विशेष ध्यान देना चाहिये। किसीसे भी हँसी-मजाक कभी नहीं करना चाहिये।

सुहागिन स्त्रियोंके लिये पातिव्रत्यधर्म एक बहुत ही महत्त्वकी चीज है। पातिव्रत्यधर्मके पालनसे स्त्रीको तीनों कालोंका ज्ञान हो जाता है और वह अपने पतिके सहित परमपद—भगवान्‌के परम धामको

प्राप्त कर लेती है। इसके लिये स्त्रियोंको पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें नरोत्तम ब्राह्मणकी कथाके प्रसंगमें वर्णित 'शुभा' नामकी पतिव्रता स्त्रीके आख्यानपर ध्यान देना चाहिये !

पतिव्रता शुभा

प्राचीन कालमें नरोत्तम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण थे। वे अपने माता-पिताका त्याग करके तीर्थसेवनके लिये चल दिये। तीर्थोंमें घूमते समय उनके वस्त्र प्रतिदिन आकाशमें बिना ही किसी आधारके सूखते थे। इससे अहंकारवश वे कहने लगे कि 'मेरे समान पुण्यात्मा और महायशस्वी कोई नहीं है।' एक दिन ऐसा कहते हुए उनके ऊपर एक बगुलेने बीट कर दी। ब्राह्मणने क्रोधमें आकर उसे शाप दे दिया, जिससे बगुला भस्म हो गया। इस पापके कारण अब उनकी धोती आकाशमें नहीं ठहरती थी, इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। तब आकाशवाणी हुई कि तुम धर्मात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ, वहाँ जानेसे तुम्हें धर्मका ज्ञान होगा।

यह सुनकर नरोत्तम मूक चाण्डालके घर गये। उस समय मूक चाण्डाल अपने माता-पिताकी सेवामें संलग्न था, नरोत्तमने उससे कहा—'तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सबके सनातन हितकी बात पूछता हूँ, उसे ठीक-ठीक बताओ।' इसपर मूक चाण्डाल बोला—'मैं माता-पिताकी सेवा करनेके बाद आपकी आवश्यकता पूर्ण कर सकूँगा, तबतक ठहरिये।' इससे नरोत्तम आग-बबूला हो गये। तब चाण्डाल बोला—'आप क्यों व्यर्थ क्रोध करते हैं ? मैं बगुला नहीं हूँ। अब आपकी धोती आकाशमें नहीं ठहर पाती है, इससे आकाशवाणी सुनकर आप मेरे घर आये हैं। अब थोड़ी देर ठहरें तो मैं

आपके प्रश्नका उत्तर दे सकता हूँ, अन्यथा आप पतिव्रता 'शुभा' के पास जाइये !'

तदनन्तर चाण्डालके घरमें जो ब्राह्मणरूपमें श्रीविष्णु भगवान् सदा निवास किया करते थे, वे निकलकर नरोत्तमसे कहने लगे कि 'चलो ! मैं भी पतिव्रता देवीके घर चलता हूँ ।' नरोत्तम कुछ सोच-कर उनके साथ चल दिये । रास्तेमें उन्होंने पूछा—'वह पतिव्रता कौन है, उनका शास्त्रज्ञान कितना है तथा पतिव्रताके क्या लक्षण हैं ? इस बातको आप ठीक-ठीक बतलाइये ।'

ब्राह्मणरूपधारी श्रीभगवान् बोले—'ब्रह्मन् ! नदियोंमें गङ्गाजी, स्त्रियोंमें पतिव्रता और देवताओंमें भगवान् श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं । जो पतिव्रता नारी प्रतिदिन अपने पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, वह अपने पितृकुल और पतिकुल—दोनोंका उद्धार कर देती है । जो स्त्री पुत्रकी अपेक्षा सौगुने स्नेहसे पतिकी आराधना करती है, राजाके समान उसका भय मानती है और पतिको भगवान्‌का स्वरूप समझती है, वह पतिव्रता है । जो पतिके साथ गृहकार्यमें दासी, रमणकालमें रमणी तथा भोजनके समय माताके समान आचरण करती है और जो विपत्तिमें उनको नेक सलाह देकर मन्त्रीका काम करती है, वह स्त्री पतिव्रता मानी गयी है । जो मन, वाणी, शरीर और क्रिया-द्वारा कभी पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती तथा सदा पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये । जिस-जिस शय्यापर पति शयन करते हैं, वहाँ-वहाँ जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक उनकी सेवा करती है, पतिके प्रति कभी जिसके मनमें डाह नहीं पैदा होती, कृपणता नहीं आती और जो मान भी

पतिव्रता ब्राह्मणी और ब्राह्मण नरोत्तम

नहीं चाहती, पतिकी ओरसे आदर मिले या अनादर—दोनोंमें जिसकी समान बुद्धि रहती है, ऐसी स्त्रीको पतिव्रता कहते हैं। जो साध्वी स्त्री सुन्दर वेषधारी भी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता और पुत्रके तुल्य मानती है, वह पतिव्रता है। द्विजश्रेष्ठ! तुम उस पतिव्रताके पास जाकर उससे अपने हितकी बात पूछो। उसका नाम शुभा है। वह रूपवती युवती है, उसके हृदयमें दया भरी है।'

यों कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये, इसपर ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने पतिव्रता शुभाके घर जाकर उसके विषयमें पूछा। शुभा तुरंत घरसे बाहर आकर दरवाजेपर खड़ी हो गयी। नरोत्तमने कहा—'देवि! तुमने जैसा देखा और समझा है, उसके अनुसार मेरे हितकी बात बताओ।'

पतिव्रता बोली—'ब्रह्मन्! इस समय मुझे पतिदेवकी सेवा करनी है, अतः अवकाश नहीं है; इसलिये आपका यह कार्य पीछे करूँगी। इस समय मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये।'

नरोत्तमने कहा—'मुझे भूख, प्यास और थकावट नहीं है, मुझे अभीष्ट बात बताओ, अन्यथा मैं तुम्हें शाप दे दूँगा।'

इसपर पतिव्रता बोली—'द्विजश्रेष्ठ! मैं बगुला नहीं हूँ। आप धर्म तुलाधारके पास जाइये और उन्हींसे अपने हितकी बात पूछिये।' यों कहकर शुभा घरके भीतर चली गयी। उसकी बात सुनकर नरोत्तम ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ, तब ब्राह्मणवेशधारी श्रीभगवान्‌ने आकर बतलाया कि यह शुभा पतिव्रता है, इसीसे यह भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंकी बातें जानती है।

पतिव्रता शुभाके पातिव्रत्यके प्रतापसे भगवान् उसके घरपर भी ब्राह्मणके रूपमें निवास किया करते थे और अन्तमें वह पतिके सहित भगवान्के साथ परमधाममें चली गयी।

स्त्रियोंके लिये कल्याणका बहुत ही सुगम साधन है पातिव्रत्य-धर्म। इसके करनेमें न तो कोई कष्ट है और न कोई खर्च ही। यदि कहें कि स्त्रियोंका कल्याण पातिव्रत्यधर्मके पालनसे कैसे होता है सो ठीक है। यह शास्त्रकी आज्ञा है कि स्त्रीका पातिव्रत्य-धर्मके पालनमात्रसे कल्याण हो जाता है और शास्त्र भगवान्का विधान है तथा भगवान्के विधान किये हुए नियमोंके अनुसार चलनेसे परमात्माकी प्राप्ति होना उचित ही है।

यदि कहें कि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती, तो यह ठीक है। पातिव्रत्य-धर्मके प्रभावसे स्त्रीके राग-द्वेषादि दोषोंका नाश हो जाता है, इससे अन्तःकरण शुद्ध होकर उसे भगवत्कृपासे अपने-आप ही ज्ञान हो जाता है। यह नियम है कि अपने अनुकूलमें राग और हर्ष तथा प्रतिकूलमें द्वेष और शोक होते हैं। कोई कार्य अपने पतिके तो अनुकूल हो पर अपने प्रतिकूल हो तो पतिव्रता स्त्री अपनी प्रतिकूलताका त्याग करके पतिके अनुकूल ही आचरण करती है एवं अपने मनके अनुकूल हो पर पतिके प्रतिकूल हो तो उसे वह नहीं करती। इस प्रकार अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलतापर बार-बार आघात पड़नेसे अपनी अनुकूल-प्रतिकूल वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, जिससे उन वृत्तियोंसे उत्पन्न होनेवाले राग-द्वेष, हर्ष-शोक आदि विकारोंका अत्यन्त अभाव होकर उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता

है एवं भगवत्कृपासे परमात्माके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान होकर वह परमात्माको प्राप्त हो जाती है। यह शास्त्रोक्त एवं युक्तिसंगत है।

पुरुष यज्ञ, दान, तप, होम, सेवा, पूजा, तीर्थ, व्रत, श्राद्ध आदि जो भी कुछ धार्मिक कार्य करता है, अपनी पत्नीको साथ लेकर ही करनेसे उसका वह कार्य सफल होता है; क्योंकि विवाह-संस्कारके समय पत्नीकी प्रार्थनापर पुरुष यह बात स्वीकार करके उसके साथ नियमबद्ध हो जाता है। इसलिये पतिके किये हुए धार्मिक कृत्यमें सम्मिलित होनेके कारण पत्नी उसके आधे हिस्सेकी भागिनी होती है; क्योंकि स्त्रीके लिये विवाहकी विधि ही वैदिक संस्कार माना गया है तथा उसके लिये पतिकी सेवा ही गुरुकुलमें निवास और गृहकार्य ही अग्निकी परिचर्या है।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥

(मनु० २। ६७)

जो पुरुष कोई भी धार्मिक कृत्य अपनी पत्नीके बिना अकेला करता है, उसका वह कार्य सफल नहीं होता। यह विषय पद्मपुराणके भूमिखण्डमें कृकल वैश्यकी कथामें स्पष्ट किया गया है। वह कथा यहाँ संक्षेपसे दी जाती है।

पतिव्रता सुकला

काशीपुरीमें एक वैश्य रहते थे। उनका नाम था कृकल। उनकी पत्नी परम साध्वी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह सदा धर्माचरणमें रत तथा पतिव्रता थी। उसका नाम था सुकला। वह सुन्दरी, मङ्गलमयी, सत्यवादिनी, शुभा और शुद्ध स्वभाववाली थी। उसकी आकृति बड़ी मनोहर थी। कृकल वैश्य भी धर्मज्ञ, विवेकसम्पन्न

और सद्गुणी थे। वैदिक तथा पौराणिक धर्मोंके श्रवणमें उनकी बड़ी लगन थी। उन्होंने तीर्थयात्राके प्रसंगमें यह सुना कि तीर्थोंका सेवन बहुत पुण्यदायक और कल्याणकारी भी है। यह सुनकर उन्होंने तीर्थयात्राके लिये जानेवाले ब्राह्मणों और व्यापारियोंके साथ चलनेका विचार कर लिया।

इसपर सुकलाने कहा—'प्राणनाथ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ। आपकी छायाकी भाँति मैं पातिव्रत्यके उत्तम व्रतका पालन करूँगी, जो नारियोंके पापोंका नाशक और उन्हें सद्गति देनेवाला है। जो स्त्री पतिपरायणा होती है, वह संसारमें पुण्यमयी कहलाती है। स्त्रियोंके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई ऐसा तीर्थ नहीं जो इस लोकमें सुखद और परलोकमें स्वर्ग तथा मोक्ष देनेवाला हो। साधुश्रेष्ठ! स्वामीके दाहिने चरणको प्रयाग और बायेंको पुष्कर समझिये। जो स्त्री इस प्रकार समझती है, उसे पतिके चरणोदकसे स्नान करनेपर उन तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है; क्योंकि स्त्रियोंके लिये पतिके चरणोदकका अभिषेक निःसंदेह प्रयाग और पुष्करतीर्थमें स्नान करनेके समान है। पति समस्त तीर्थोंके समान है, पति सम्पूर्ण धर्मोंका स्वरूप है।* यज्ञकी दीक्षा लेकर यज्ञोंके अनुष्ठान

---

* सव्यं पादं स्वभर्तुश्च प्रयागं विद्धि सत्तम।
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्॥
तस्य पादोदकस्नानात्तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः॥
सर्वतीर्थसमो भर्ता सर्वधर्ममयः पतिः।
(४१। १३—१५)

करनेसे पुरुषको जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पतिकी पूजा करके तत्काल पा लेती है । अतः प्रियतम ! मैं भी आपकी सेवा करती हुई तीर्थोंमें चलूँगी और आपकी ही छायाका अनुसरण करती हुई लौट आऊँगी ।'

इसपर कृकलने उसे साथ ले जाना स्वीकार कर लिया; किंतु उसने सोचा—'सर्दी और धूपके कारण तीर्थोंके दुर्गम मार्गपर चलनेमें इसे बड़ा कष्ट होगा । अतः इसे साथ न लेकर मैं अकेला ही यात्रा करूँगा ।' और वे रातमें बिना पता दिये ही चुपकेसे साथियोंके साथ चल दिये । जब सुकला प्रभातके समय उठी, तब उसने स्वामीको घरमें नहीं देखा । पतिदेव तीर्थयात्राको चले गये, यह जानकर उस पतिपरायणा स्त्रीने निश्चय किया कि 'जबतक स्वामी लौटकर नहीं आयेंगे, तबतक मैं भूमिपर चटाई बिछाकर सोऊँगी । घी, तेल और दूध-दही नहीं खाऊँगी । पान और नमकका भी त्याग कर दूँगी । गुड़ आदि मीठी चीजोंको भी छोड़ दूँगी । स्वामीके आनेतक एक समय भोजन करूँगी अथवा उपवास करके रह जाऊँगी ।'

इस प्रकार नियम लेकर सुकला बड़े दुःखसे दिन बिताने लगी । उसने एक वेणी धारण करना आरम्भ कर दिया । एक ही अँगियासे वह अपने शरीरको ढकने लगी । उसका वेष मलिन हो गया । वह एक ही मलिन वस्त्र धारण करके रहती । इस तरह दुःखमय आचारका पालन करनेसे वह अत्यन्त दुबली हो गयी । निरन्तर पतिके लिये व्याकुल रहने लगी । दिन-रात रोती रहती थी । रातको उसे कभी नींद नहीं आती थी और न भूख ही लगती थी ।

सुकलाकी यह अवस्था देखकर उसकी सहेलियोंने पूछा—'सखी ! तुम इस समय क्यों रो रही हो ?' सुकला बोली—'सखियो ! मेरे

धर्मपरायण स्वामी मुझे छोड़कर तीर्थयात्रा करने चले गये हैं, अतः मैं उनके वियोगसे अत्यन्त दुखी हूँ।'

सखियोंने कहा—'बहिन! तुम व्यर्थ ही शोक कर रही हो, वृथा ही अपने शरीरको सुखा रही हो तथा अकारण ही भोगोंका परित्याग कर रही हो। मौजसे खाओ-पियो। क्यों कष्ट उठाती हो? कौन किसका स्वामी, कौन किसके पुत्र और कौन किसके सगे-सम्बन्धी हैं? संसारमें कोई किसीका नहीं है। किसीके साथ भी नित्य सम्बन्ध नहीं है। सखी! खाना-पीना और मौज उड़ाना यही इस संसारका फल है। मनुष्यके मर जानेपर कौन इस फलका उपभोग करता है और कौन उसे देखने आता है।'

सुकला बोली—'सखियो! तुमलोगोंने जो बात कही है, वह वेदोंको मान्य नहीं है। जो नारी अपने स्वामीसे अलग होकर सदा अकेली रहती है, उसे पापिनी समझा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष उसका आदर नहीं करते। वेदोंमें सदा यही बात देखी गयी है कि पतिके साथ नारीका सम्बन्ध पूर्वसञ्चित पुण्यके प्रभावसे ही होता है और किसी कारणसे नहीं। शास्त्रोंका वचन है कि पति ही सदा नारियोंके लिये तीर्थ है, इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह सच्चे भावसे पतिसेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और सदा पतिका ही पूजन करे। गृहस्थ नारी पतिके बायें भागमें बैठकर जो दान-पुण्य और यज्ञ करती है, उसका बहुत बड़ा फल शास्त्रोंमें बतलाया गया है; वैसा फल काशीकी गङ्गा, पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन तथा केदारतीर्थमें स्नान करनेसे भी नहीं मिल सकता।

पतिव्रता स्त्रीको पतिकी प्रसन्नतासे उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान, पान, वस्त्र, आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, यश, कीर्ति और उत्तम गुण आदि सब कुछ मिल जाता है। जो स्त्री पतिके रहते हुए उसकी सेवाको छोड़कर दूसरे किसी धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका वह कार्य निष्फल होता है तथा वह लोकमें व्यभिचारिणी कही जाती है।* नारियोंका यौवन, रूप और जन्म—सब कुछ पतिके लिये होते हैं, इस भूमण्डलमें नारीकी प्रत्येक वस्तु उसके पतिकी आवश्यकता-पूर्तिका ही साधन है। पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओंसहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ एवं पुण्य है†। पतिके बाहर चले जानेपर यदि स्त्री शृङ्गार करती है तो उसका रूप, वर्ण सब कुछ निरर्थक है। पृथ्वीपर लोग उसे देखकर कहते हैं कि यह निश्चय ही व्यभिचारिणी है। इसलिये किसी भी स्त्रीको अपने सनातनधर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। जब पतिदेव यहाँ उपस्थित नहीं हैं, तब मैं फिर किस प्रकार भोगोंका उपभोग करूँ—मेरे लिये ऐसा विचार निश्चय ही पापपूर्ण है।'

सुकलाके मुखसे इस प्रकार उत्तम पातिव्रत्यधर्मका वर्णन सुनकर सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नारियोंको सद्गति प्रदान करनेवाले उस

---

* विद्यमाने यदा कान्ते अन्यधर्मं करोति या।
निष्फलं जायते तस्याः पुंश्चली परिकथ्यते॥
(पद्म० भूमि० ४१। ६९)

† भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता देवतैः सह।
भर्ता तीर्थं च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन॥
(पद्म० भूमि० ४१। ७५)

परम पवित्र धर्मका श्रवण करके समस्त नर-नारी धर्मानुरागिणी महाभागा सुकलाकी प्रशंसा करने लगे।

सुकलाके मनमें केवल पतिका ही ध्यान था और पतिकी ही कामना थी। उसके सतीत्वका प्रभाव देवराज इन्द्रने भी भलीभाँति देखा तथा उसके विषयमें पूर्णतया विचार करके वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं इसके इस अविचल धैर्यको नष्ट कर दूँगा।' ऐसा निश्चयकर उन्होंने कामदेवका स्मरण किया। कामदेव अपनी प्रिया रतिके साथ वहाँ आ गये और हाथ जोड़कर इन्द्रसे बोले—'नाथ! इस समय आपने मुझे किसलिये याद किया है। आज्ञा दीजिये, मैं सब प्रकारसे उसका पालन करूँगा।'

इन्द्रने कहा—'कामदेव! यह जो पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली महाभागा सुकला है, वह परम पुण्यवती और मङ्गलमयी है, मैं इसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस कार्यमें तुम मेरी पूरी तरहसे सहायता करो।'

कामदेवने उत्तर दिया—'सहस्रलोचन! मैं आपकी इच्छापूर्तिके लिये आपकी सहायता अवश्य करूँगा। मैं देवताओं, मुनियों और बड़े-बड़े ऋषियोंको भी जीतनेकी शक्ति रखता हूँ, फिर एक साधारण कामिनीको, जिसके शरीरमें कोई बल ही नहीं होता, जीतना कौन बड़ी बात है।'

तब देवराज इन्द्र उस स्थानपर गये, जहाँ वह परम पुण्यवती पतिव्रता रहती थी। वह अपने घरके द्वारपर अकेली बैठी थी और केवल पतिके ध्यानमें तन्मय हो रही थी। वह प्राणोंको वशमें करके स्वामीका चिन्तन करती हुई विकल्पशून्य हो गयी थी। कोई भी पुरुष

उसकी स्थितिकी कल्पना नहीं कर सकता था। उस समय इन्द्र अनुपम तेज और सौन्दर्यसे युक्त तथा हाव-भावसे सुशोभित अत्यन्त अद्भुत रूप धारण करके सुकलाके सामने प्रकट हुए। उत्तम कामभावसे युक्त पुरुषको इस प्रकार सामने विचरण करते देख धर्मात्मा कृकल वैश्यकी पत्नीने उसके रूप, गुण और तेजका तनिक भी सम्मान नहीं किया। जैसे कमलके पत्तेपर छोड़ा हुआ जल उस पत्तेको छोड़कर दूर चला जाता है, उसपर ठहरता नहीं, उसी प्रकार वह सती भी उस पुरुषकी ओर आकृष्ट नहीं हुई। वह घरके भीतर चली गयी और अपने पतिमें ही अनुरक्त हो उन्हींका चिन्तन करने लगी।

इन्द्र सुकलाके शुद्ध भावको समझकर सामने खड़े हुए कामदेवसे बोले—'इस सतीने सत्यरूप पतिके ध्यानका कवच धारण कर रक्खा है, अतः सुकलाको परास्त करना असम्भव है। यह पतिव्रता अपने हाथमें धर्मरूपी धनुष और ध्यानरूपी उत्तम बाण लेकर इस समय रणभूमिमें तुमसे युद्ध करनेको उद्यत है। अज्ञानी पुरुष ही महात्माओंके साथ वैर बाँधते हैं। कामदेव! इस सतीके तपका नाश करनेसे हम दोनोंको अनन्त एवं अपार दुःख भोगना पड़ेगा। इसलिये अब हमें इसे छोड़कर यहाँसे चल देना चाहिये। तुम जानते हो, पहले एक बार मैं सती अहल्याके साथ समागम करनेका पापमय परिणाम—असह्य दुःख भोग चुका हूँ। महर्षि गौतमने मुझे भयंकर शाप दिया था। इस आगकी लपटको छूनेका साहस कौन करेगा। कौन ऐसा मूर्ख है, जो अपने गलेमें भारी पत्थर बाँधकर समुद्रमें उतरेगा तथा किसको

मौतके मुखमें जानेकी इच्छा है, जो सती स्त्रीको विचलित करनेका प्रयत्न करे।'

इन्द्रने कामदेवको उत्तम शिक्षा देनेके लिये बहुत ही नीतियुक्त बात कही; उसे सुनकर कामदेवने इन्द्रसे कहा—'देवेश! मैं तो आपके ही आदेशसे यहाँ आया था। अब आप धैर्य, प्रेम तथा पुरुषार्थका त्याग करके ऐसी पौरुषहीनता और कायरताकी बातें क्यों करते हैं?'

तत्पश्चात् इन्द्र और कामदेव सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये पुनः गये। तब सत्यने धर्मसे कहा, 'धर्म! कामदेवकी जो चेष्टा हो रही है, उसपर दृष्टिपात करो। मैंने तुम्हारे, अपने तथा महात्मा पुण्यके लिये जो स्थान बनाया था, उसे यह नष्ट करना चाहता है। दुष्टात्मा काम हमलोगोंका शत्रु है। तपस्वी ब्राह्मण, सदाचारी पति और पतिव्रता पत्नी—ये तीन मेरे निवास-स्थान हैं। जहाँ मेरी वृद्धि होती है, जहाँ मैं पुष्ट और संतुष्ट रहता हूँ, वहीं तुम्हारा भी निवास होता है। श्रद्धाके साथ पुण्य भी वहाँ आकर क्रीड़ा करते हैं। मेरे शान्तियुक्त मन्दिरमें क्षमाका भी आगमन होता है तथा जहाँ मैं रहता हूँ, वहीं संतोष, इन्द्रिय-संयम, दया, प्रेम, प्रज्ञा और लोभहीनता आदि गुण भी निवास करते हैं। वहीं पवित्र भाव रहता है। ये सभी मेरे बन्धु-बान्धव हैं। धर्म! चोरी न करना, अहिंसा, सहनशीलता और पवित्र बुद्धि—ये सब मेरे ही घरमें आकर धन्य होते हैं। गुरु-शुश्रूषा, लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीविष्णु तथा अग्नि आदि देवता भी मेरे घरमें पधारते हैं। मोक्षमार्गके प्रकाशक ज्ञान और उदारता आदिसे युक्त हो पूर्वोक्त व्यक्तियोंके साथ मैं धर्मात्मा पुरुषों और सती

स्त्रियोंके भीतर निवास करता हूँ। ये जितने भी साधु-महात्मा हैं, सब मेरे गृह-स्वरूप हैं; इन सबके भीतर मैं उक्त कुटुम्बियोंके साथ निवास करता हूँ। कल्याणमय भगवान् शिव भी मेरे निवास-स्थान हैं। कृकल वैश्यकी प्रियतमा भार्या मङ्गलमयी सुकला भी मेरा उत्तम घर है। किंतु आज पापी काम इसे भी जला डालनेको उद्यत हुआ है।'

धर्मने कहा—'मैं कामका तेज कम कर दूँगा। मैंने ऐसा उपाय सोच लिया है, जिससे काम आज भी भाग खड़ा होगा।'

उधर कामदेवकी भेजी हुई क्रीडा सती स्त्रीका रूप धारणकर सुकलाके घर गयी। उस रूपवती नारीको आयी देख सुकलाने आदरयुक्त वचन कहकर उसका सम्मान किया। फिर दोनोंमें परस्पर बातचीत होने लगी। क्रीडा बोली—'देवि! मेरे स्वामी बड़े बलवान्, गुणज्ञ, धीर और अत्यन्त पुण्यात्मा हैं, परंतु मुझे छोड़कर न जाने वे कहाँ चले गये हैं। मैं मन्दभागिनी हूँ। महाभागे! नारियोंके लिये रूप, सौभाग्य, शृङ्गार, सुख और सम्पत्ति सब कुछ पति ही है—यही शास्त्रोंका मत है।'

पतिव्रता सुकलाने क्रीडाकी इन सारी बातोंको एक दुःखिनी नारीके हृदयका सच्चा भाव समझकर सुना और वह उसके दुःखसे दुखी हो गयी। फिर उसने अपना हाल थोड़ेमें कह सुनाया। तब क्रीडाने उसे सान्त्वना देकर बहुत समझाया-बुझाया। तदनन्तर एक दिन उसने सुकलासे कहा 'सखी! देखो, सामने अनेकों दिव्य वृक्षोंसे शोभायमान सुन्दर वनमें एक परम पवित्र पापनाशन तीर्थ है, चलो, हम दोनों वहाँ पुण्य-संचय करने चलें।'

यह सुनकर सुकला उस मायामयी स्त्रीके साथ चली गयी। उसने वनमें प्रवेश करके देखा तो उसे प्रतीत हुआ मानो उसमें नन्दन-

वनकी सारी शोभा उतर आयी हो ।

इसी समय रतिके साथ काम और इन्द्र भी वहाँ आये । इन्द्र सम्पूर्ण भोगोंके अधिपति होकर भी कामोपभोगके लिये व्यग्र थे । उन्होंने कामदेवको पुकारकर कहा—'लो; यह सुकला आ गयी, क्रीडाके आगे खड़ी है, इसपर प्रहार करो ।' कामदेव बोला—'सहस्रलोचन ! आप लीला और चातुरीसे युक्त अपने दिव्य रूपको प्रकट कीजिये, जिसका आश्रय लेकर मैं इसके ऊपर प्रहार करूँ; क्योंकि महादेवने मेरे रूपको पहले ही हर लिया, जिससे मेरा शरीर है ही नहीं । जब मैं किसी नारीको अपने बाणोंका निशाना बनाना चाहता हूँ, उस समय पुरुषशरीरका आश्रय लेकर अपने रूपको प्रकट करता हूँ । इसी तरह पुरुषपर प्रहार करनेके लिये मैं नारी-देहका आश्रय लेता हूँ । पुरुष जब पहले-पहल किसी सुन्दरी नारीको देखकर बारंबार उसीका चिन्तन करने लगता है, तब मैं चुपके-से उसके भीतर घुसकर उसे उन्मत्त बना देता हूँ । स्मरण—चिन्तनसे मेरा प्रादुर्भाव होता है, इसीलिये मेरा नाम 'स्मर' हो गया है । आज मैं आपके रूपका आश्रय ले इस नारीको अपने इच्छानुसार नचाऊँगा ।' यों कहकर कामदेवने इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया ।

उस वनमें जानेपर देवी सुकलाने क्रीडासे पूछा—'सखी ! यह मनोरम दिव्य वन किसका है ?' क्रीडा बोली—'यह स्वभावसिद्ध दिव्य गुणोंसे युक्त सारा वन कामदेवका है, तुम भलीभाँति इस वनका निरीक्षण करो ।'

दुरात्मा कामकी यह चेष्टा देखकर पतिव्रता सुकलाने वायुके द्वारा लायी हुई वहाँकी फूलोंकी सुगन्धको ग्रहण नहीं किया और न वहाँके

रसोंका ही आस्वादन किया। यह देखकर कामदेवका मित्र वसन्त बहुत लज्जित हुआ।

इसके बाद कामदेवकी पत्नी रति प्रीतिको साथ लेकर आयी और सुकलासे हँसकर बोली—'भद्रे! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ। तुम मुझ रति और प्रीतिके साथ यहाँ रमण करो।' सुकलाने कहा—'जहाँ मेरे स्वामी हैं, वहीं मैं भी हूँ। मैं सदा पतिके साथ रहती हूँ। मेरा काम, मेरी प्रीति सब वहीं है। यह शरीर तो छायामात्र है।' यह सुनकर रति और प्रीति दोनों लज्जित हो गयीं तथा कामके पास जाकर बोलीं—'महाप्राज्ञ! अब आप अपना पुरुषार्थ छोड़ दीजिये, इस नारीको जीतना कठिन है। यह महाभागा पतिव्रता सदैव अपने पतिकी ही कामना रखती है।'

कामदेवने कहा—'देवि! जब यह इन्द्रके रूपको देखेगी, उस समय मैं इसे अवश्य घायल कर दूँगा।' तदनन्तर देवराज इन्द्र परम सुन्दर वेष धारण किये रतिके पीछे-पीछे चले। उनकी गतिमें अत्यन्त ललित विलास दृष्टिगोचर होता था। वे सब प्रकारके आभूषण, दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्धसे सुसज्जित हो सुकलाके पास आये और बोले—'मैंने तुम्हारे पास अपनी दूती (क्रीडा) प्रीति और रतिको भेजा था। तुम मेरी प्रार्थना क्यों नहीं मानती। मैं स्वयं तुम्हारे पास आया हूँ, मुझे स्वीकार करो।'

सुकला बोली—'जबतक मेरे नेत्र खुले रहते हैं, तबतक मैं निरन्तर पतिके ही कार्यमें लगी रहती हूँ। आप कौन हैं, जो मृत्युका भी भय छोड़कर मेरे पास आये हैं?' इन्द्रियसंयमसे संयुक्त विभिन्न गुणोंद्वारा उत्तम धर्म सदा मेरी रक्षा करता है। वह देखो, शान्ति

और क्षमाके साथ सत्य मेरे सामने उपस्थित हैं। महाबली और परम यशस्वी सत्य कभी मेरा त्याग नहीं करता। फिर आप क्यों बलपूर्वक मुझे प्राप्त करना चाहते हैं। मेरे सत्य, धर्म, पुण्य और ज्ञान आदि बलवान् पुत्र सदा मेरी रक्षामें तत्पर हैं। मैं नित्य सुरक्षित हूँ। इन्द्रियसंयम और मनोनिग्रहमें तत्पर हूँ। साक्षात् शचीपति इन्द्र भी मुझे जीतनेकी शक्ति नहीं रखते। यदि महापराक्रमी कामदेव भी आ जाय तो मुझे कोई परवा नहीं है; क्योंकि मैं अनायास ही सतीत्वरूपी कवचसे सदा सुरक्षित हूँ। निःसंदेह मुझपर कामदेवके बाण व्यर्थ हो जायँगे; प्रत्युत ये महाबली धर्म आदि तुम्हींको मार डालेंगे, दूर हटो, भाग जाओ, मेरे सामने खड़े न होओ। यदि मना करनेपर भी खड़े रहोगे तो जलकर खाक हो जाओगे। मेरे स्वामीकी अनुपस्थितिमें यदि तुम मेरे शरीरपर दृष्टि डालोगे तो जैसे आग सूखी लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें भस्म कर डालूँगी।'*

---

* अहं रक्षापरा नित्यं दमशान्तिपरायणा।
न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षाच्छचीपतिः॥
यदि वा मन्मथो वापि समागच्छति वीर्यवान्।
दंशिताहं सदा सत्यमत्याकष्टेन सर्वदा॥
निरर्थकास्तस्य बाणा भविष्यन्ति न संशयः।
त्वामेव हि हनिष्यन्ति धर्माद्यास्ते महाबलाः॥
दूरं गच्छ पलायस्व नात्र तिष्ठ ममाग्रतः।
वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि॥
भर्त्रा विना निरीक्षेत मम रूपं यदा भवान्।
यथा दारु दहेद्वह्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा॥
(पद्म० भूमि० ५८। ३२—३६)

सुकलाने जब यह कहा, तब तो उस सतीके भयंकर शापके डरसे व्याकुल हो इन्द्र आदि सब लोग जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। सबके चले जानेपर पुण्यमयी पतिव्रता सुकला पतिका ध्यान करती हुई अपने घर लौट आयी।

धर्मात्मा कृकल वैश्य भी सब तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके अपने साथियोंके साथ बड़े आनन्दसे घरकी ओर लौटे। वे सोचते थे कि मेरा संसारमें जन्म लेना सफल हो गया; मेरे सब पितर स्वर्ग चले गये होंगे। इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि एक दिव्य रूपधारी विशालकाय पुरुष उनके पिता-पितामहोंको प्रत्यक्षरूपसे बाँधकर सामने प्रकट हुए और बोले—'वैश्य! तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं है। तुम्हें तीर्थयात्राका फल नहीं मिला। तुमने व्यर्थ ही इतना परिश्रम किया।' यह सुनकर कृकल वैश्य दुःखित हो गये और उन्होंने पूछा—'आप-कौन हैं, जो ऐसी बात कह रहे हैं? मेरे पिता-पितामह क्यों बाँधे गये हैं? मुझे तीर्थका फल क्यों नहीं मिला?'

धर्मने कहा—'(मैं धर्म हूँ) जो पतिव्रता पत्नीको अकेली छोड़कर धर्म करने बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है। जो सब प्रकारके सदाचारोंमें संलग्न रहनेवाली, प्रशंसाके योग्य आचरण-वाली, धर्मसाधनमें तत्पर, सदा पातिव्रत्यका पालन करनेवाली, सब बातोंको जाननेवाली तथा ज्ञानसे प्रेम करनेवाली है, ऐसी गुणवती, पुण्यमयी और महासती नारी जिसकी पत्नी हो, उसके घरमें सदा देवता निवास करते हैं। पितर भी उसके घरमें रहकर निरन्तर उसके यशकी कामना करते रहते हैं। गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ, सागर, यज्ञ, गौ, ऋषि तथा सम्पूर्ण तीर्थ भी उस घरमें उपस्थित रहते हैं।

अपनी पत्नीको साथ लिये बिना जो तुमने तीर्थमें श्राद्ध और दान किया है, उसी दोषसे तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये हैं। तुम चोर हो और तुम्हारे ये पितर भी चोर हैं; क्योंकि इन्होंने लोलुपतावश तुम्हारा दिया हुआ श्राद्धका अन्न खाया है। पत्नी ही गार्हस्थ्यधर्मकी स्वामिनी है; उसके बिना ही जो तुमने शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह स्पष्ट ही तुम्हारी चोरी है। जब पत्नी अपने हाथसे भोजन तैयार करके देती है, तब वह अमृतके समान मधुर होता है। उसी अन्नको पितर प्रसन्न होकर भोजन करते हैं तथा उसीसे उन्हें विशेष संतोष और तृप्ति होती है। अतः पत्नीके विना जो धर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

कृकलने पूछा—'धर्म! अब कैसे मुझे सिद्धि प्राप्त होगी और किस प्रकार मेरे पितरोंको बन्धनसे छुटकारा मिलेगा?' तब धर्मने कहा—'महाभाग! अपने घर जाओ। तुम्हारी धर्म[illegible] पुण्यवती पत्नी सुकला तुम्हारे बिना बहुत दुखी हो गयी है, उसे सान्त्वना दो और उसीके हाथसे श्राद्ध करो। अपने घरपर ही पुण्य-तीर्थोंका स्मरण करके तुम श्रेष्ठ देवताओंका पूजन करो, इससे तुम्हारी की हुई तीर्थयात्रा सफल हो जायगी।'

यों कहकर धर्म लौट गये। परम बुद्धिमान् कृकल भी अपने घर गये और पतिव्रता पत्नीको देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सुकलाने स्वामीको आया देख उनके शुभागमनके उपलक्ष्यमें माङ्गलिक कार्य किया। तत्पश्चात् धर्मात्मा वैश्यने धर्मराजकी सारी चेष्टा बतलायी। स्वामीके आनन्ददायक वचन सुनकर महाभागा सुकलाको बड़ा हर्ष हुआ। उसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक

श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल तथा उसकी साध्वी पत्नी दोनोंकी सराहना करने लगे। भगवान् श्रीविष्णु, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी अपनी-अपनी देवीके साथ वहाँ आये। इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता उस सतीके सत्यसे संतुष्ट थे। सबने उन दोनों पति-पत्नीसे कहा—'सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी पत्नीके साथ वर माँगो।'

कृकलने पूछा—'देववरो! मेरे किस पुण्य और तपके प्रसङ्गसे पत्नीसहित मुझे वर देनेको आपलोग पधारे हैं?' इन्द्रने कहा—'यह महाभागा सुकला सती है। इसके सत्यसे संतुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।' यह कहकर इन्द्रने सुकलाके सतीत्वकी परीक्षाका सारा वृत्तान्त थोड़ेमें कह सुनाया। उसके सदाचारका माहात्म्य सुनकर उसके स्वामीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्षोल्लाससे कृकलके नेत्र डबडबा आये। धर्मात्मा वैश्यने पत्नीके साथ समस्त देवताओंको बारंबार साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'महाभाग देवगण! आप सब लोग प्रसन्न हों; तीनों सनातन देवता—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हमपर संतुष्ट हों तथा अन्य जो पुण्यात्मा ऋषि मुझपर कृपा करके यहाँ पधारे हैं, वे भी प्रसन्न हों। मैं सदा भगवान्‌की भक्ति करता रहूँ। आपलोगोंकी कृपासे धर्म तथा सत्यमें मेरा निरन्तर अनुराग बना रहे एवं अन्तमें पत्नी और पितरोंके सहित मैं भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाना चाहता हूँ।'

देवता बोले—'महाभाग! एवमस्तु, यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।' यों कहकर देवताओंने उन दोनों पति-पत्नीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की तथा उनको वर देकर पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-

अपने लोकको चले गये । जो मनुष्य सुकलाके इस उपाख्यानको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है ।

पतिव्रता सुकलाके इस आख्यानसे पुरुषोंको यह उपदेश ग्रहण करना चाहिये कि स्त्रीको साथ लिये बिना किये हुए यज्ञ, दान, तप, श्राद्ध आदि निष्फल होते हैं तथा स्त्रियोंको यह उपदेश लेना चाहिये कि पातिव्रत्य धर्मका कितना भारी प्रभाव है कि देवराज इन्द्र तो सतीके भयसे प्राणोंको लेकर भाग गये और उसके पातिव्रत्यके कारण देवता, पितर और ऋषिगण उसके घर पधारे एवं ब्रह्मा-विष्णु-महेशके दर्शन करके वरदान पाकर वे मुक्त हो गये ।

स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्रताका निषेध

गीतामें श्रीभगवान्‌ने कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥
(१८ । ४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्म-द्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है ।'

जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णवाले सभी मनुष्य अपने-अपने कर्मोंद्वारा भगवान्‌को पूजकर परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं, इसी प्रकार कन्या, सुहागिन तथा विधवा स्त्रियाँ भी अपने-अपने कर्तव्यकर्मके द्वारा भगवान्‌को पूजकर परम गतिको प्राप्त हो जाती हैं ।

कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या है, इस विषयमें शास्त्र ही प्रमाण है । जो स्त्री शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार चलती है, उससे

उसका निश्चय ही कल्याण होता है, किंतु यदि कोई स्त्री शास्त्रमर्यादाको त्यागकर मनमाना काम अच्छा समझकर भी करती है, तो भी उसको कुछ लाभ नहीं होता । भगवान्‌ने गीतामें बतलाया है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥
(१६ । २३)

'जो मनुष्य शास्त्रविधिको त्यागकर अपनी इच्छासे मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परम गतिको और न सुखको ही ।'

मनु आदि ऋषियोंने स्त्री-जीवनका स्वरूप और स्वभाव भलीभाँति समझकर उनके हित और रक्षाके लिये उनको सदा पुरुषोंके शासनमें रहनेकी ही आज्ञा दी है—

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता ।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वपि ॥
(५ । १४७)

'स्त्री बालिका हो या युवती हो अथवा बूढ़ी हो क्यों न हो, उसे अपने घरमें भी कुछ भी कार्य स्वतन्त्रतासे नहीं करना चाहिये ।'

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्राहस्य यौवने ।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम् ॥
(मनु० ५ । १४८)

'बाल्यावस्थामें वह पिताके अधीन रहे, युवावस्थामें पतिके वशमें रहे और यदि पतिकी मृत्यु हो जाय तो पुत्रोंके अधीन रहे । तात्पर्य यह कि स्त्री कभी स्वच्छन्दताका आश्रय न ले ।'

पित्रा भर्त्रा सुतैर्वापि नेच्छेद् विरहमात्मनः ।
एषां हि विरहेण स्त्री गर्ह्ये कुर्यादुभे कुले ॥
(मनु० ५ । १४९)

'वह पिता, पति अथवा पुत्रोंसे अपनेको अलग रखनेकी कभी इच्छा न करे; क्योंकि इनसे अलग रहनेसे पितृकुल और पतिकुल—दोनोंके कलङ्कित होनेकी सम्भावना है ।'

स्त्रियोंके स्वतन्त्र और अरक्षित होनेपर नाना प्रकारके दोष उत्पन्न हो जाते हैं और उनकी रक्षा करनेसे अपनी और धर्मकी रक्षा होती है । इसीलिये शास्त्रोंमें स्त्रियोंके लिये स्वतन्त्रताका निषेध किया है । शास्त्रकार ऋषि-महर्षि त्रिकालदर्शी, स्वार्थत्यागी, समदर्शी, अनुभवी, पूर्वापरको गहराईसे सोचनेवाले और संसारके परम हितैषी थे । अतः उनकी बातोंपर हमलोगोंको विशेष ध्यान देकर स्त्रियोंकी सब प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये । श्रीमनुमहाराज कहते हैं—

सूक्ष्मेभ्योऽपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥
(९ । ५)

'आसक्ति अथवा कुसङ्ग सूक्ष्म-से-सूक्ष्म क्यों न हो, उससे भी स्त्रियोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि वे सुरक्षित न होनेपर पति और पिता—दोनोंके कुलको ही शोकमें डाल देती हैं ।'

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ।
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ॥
(मनु० ९ । ७)

'जो अपनी पत्नीकी यत्नपूर्वक रक्षा करता है, वह अपनी संतानको वर्णसंकर होनेसे बचाता है, अपने चरित्रको निष्कलङ्क रखता है, अपनी कुल-मर्यादाकी रक्षा करता है तथा अपनी और अपने धर्मकी भी रक्षा कर लेता है।'

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत्।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे॥

(मनु० ९। ११)

'स्त्रीकी रक्षा करनेका सरल उपाय यह है कि उसे धनके संग्रह और उसके (यथायोग्य) खर्च करनेके कार्यमें लगावे तथा घरको पवित्र स्वच्छ रखने, दान-पूजन आदि धर्म-कार्य करने, रसोई बनाने एवं घरके सामानकी देख-रेख करनेके कार्यमें नियुक्त करे। (इन कार्योंमें दक्ष स्त्री कुल-कुटुम्बकी भलीभाँति सेवा करती हुई स्वयं भी सुरक्षित रहती है।)'

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानि षट्॥

(मनु० ९। १३)

'मद्य-पान, दुष्टोंका सङ्ग, पतिसे अलग रहना, अकेली घूमना, अधिक सोना तथा दूसरेके घरमें निवास करना—ये स्त्रियोंके लिये छः दोष हैं (इनसे स्त्रियोंके दूषित होनेकी सम्भावना है, अतः स्त्रियाँ इनका त्याग करें)।'

मनुने कहा है—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

(९। ३)

'स्त्रीकी कुमारावस्थामें पिता रक्षा करता है, युवावस्थामें पति रक्षा करता है और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं। अतः उसे कभी स्वाधीन नहीं रहना चाहिये।'

श्रीयाज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

रक्षेत्कन्यां पिता विन्नां पतिः पुत्रास्तु वार्धके।
अभावे ज्ञातयस्तेषां न स्वातन्त्र्यं क्वचित्स्त्रियः॥

(१।८५)

'विवाहसे पूर्व कन्याकी पिता रक्षा करे, विवाह होनेपर पति रक्षा करे और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करे तथा उनके अभावमें कुटुम्बी लोग स्त्रीकी रक्षा करें; क्योंकि स्त्रियोंके लिये कहीं भी स्वतन्त्रताका विधान नहीं है।'

विवाह

इसलिये माता-पिताका कर्तव्य है कि अपनी कुलमर्यादाके योग्य, सुन्दर, श्रेष्ठ, अच्छे स्वभाववाले, गुणवान्, सदाचारी, परिश्रमशील, सवर्ण स्वदेशीय वरकी प्रयत्नपूर्वक खोज करके उसके साथ अपनी कन्याका विवाह करे। इस विषयमें हमें मनुजीके वचनोंपर भी ध्यान देना चाहिये।

श्रीमनुजी कहते हैं—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद् यथाविधि॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥

(९।८८-८९)

'श्रेष्ठ, रूपवान् और कन्याके योग्य तुल्य वर मिल जाय तो कन्याकी विवाह-योग्य अवस्था न होनेपर भी उसे उस वरको विधिपूर्वक दे दे। (पक्षान्तरमें) ऋतुमती होनेपर भी चाहे कन्या जन्मभर घरमें ही रहे, किंतु इसे किसी गुणहीन (अयोग्य) वरको कभी भी न दे।'

कन्याको उचित है कि वह—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम्॥
अदीयमाना भर्तारमधिगच्छेद् यदि स्वयम्।
नैनः किञ्चिदवाप्नोति न च यं साधिगच्छति॥

(९। ९०-९१)

'ऋतुमती होनेपर भी तीन वर्षतक (पिताके दानकी) बाट देखे, इतने समयके बाद वह स्वयं अपने तुल्य वरको वर ले। पिता आदिके तीन वर्षतक दान न करनेपर यथासमय कन्या यदि किसी पुरुषको पतिरूपसे वर लेती है तो उसे तनिक भी पाप नहीं लगता और न जिसे वह वरती है, उसे ही पाप लगता है।'

कन्याका पिता, भाई या अभिभावक वरपक्षवालोंसे धन-सम्पत्ति न ले तथा वाग्दान करनेके बाद उलट-फेर न करे। मनुमहाराज कहते हैं—

आददीत न शूद्रोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत्।
शुल्कं हि गृह्णन् कुरुते छन्नं दुहितृविक्रयम्॥

(९। ९८)

'कन्याके विवाहमें शूद्र भी शुल्क न ले; क्योंकि जो शुल्क लेता है, वह गुप्तरूपसे कन्याको बेचता है।'

नानुशुश्रुम जात्वेतत् पूर्वेष्वपि हि जन्मसु।
शुल्कसंज्ञेन मूल्येन छन्नं दुहितृविक्रयम्॥
(मनु० ९। १००)

'यह बात हमने कभी पहलेकी सृष्टियों (कल्पों) में भी नहीं सुनी कि शुल्करूपी मूल्यसे किसीने कन्याका गुप्तरूपसे विक्रय किया हो।'

एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः।
यदन्यस्य प्रतिज्ञाय पुनरन्यस्य दीयते॥
(मनु० ९। ९९)

'पूर्वमें किन्हीं प्राचीन सज्जन पुरुषोंने भी एकको वाग्दान करके अपनी कन्या दूसरेको कभी नहीं दी और न (प्रायः) वर्तमान कालमें ही लोग ऐसा करते हैं।'

अनुचित हँसी-मजाक और गंदे गीतका त्याग आवश्यक

कुछ स्थानोंमें स्त्रियाँ अपने देवरके साथ हँसी-मजाक किया करती हैं और उनके नाम ले-लेकर बुरे गीत गाया करती हैं, यह कार्य शास्त्रविरुद्ध है। अश्लील गीत तो स्त्रियोंको कभी किसी अवसरमें गाने ही नहीं चाहिये और देवरका नाम लेकर गंदे गीत गाना तो महान् पाप है; क्योंकि देवर पुत्रके समान है और देवरके लिये भौजाई माताके समान वन्दनीय है। मनुने कहा है—

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता॥
(९। ५७)

'बड़े भाईकी जो स्त्री है, वह छोटे भाईके लिये गुरुपत्नीके समान है और छोटे भाईकी जो स्त्री है, वह बड़े भाईके लिये पुत्र-वधूके समान मानी गयी है।'

अतएव स्त्रियोंको यह निश्चयरूपसे मान लेना चाहिये कि पिता, भाई, पुत्र, ससुर, जेठ आदि तथा सभ्यसमाजके सामने अथवा अकेलेमें भी कभी भद्दे और अश्लील गीत गानेसे लोकमें निन्दा और परलोकमें नरककी प्राप्ति होती है। भद्दे और अश्लील गीतोंसे अपनी जबान गंदी होती है, मनमें बुरी वासनाएँ प्रबल होती हैं, सुननेवालोंपर बुरा असर होता है और वातावरणमें बुराई फैलती है। ऐसे गीतको सुनकर, कोई भी सज्जन ऐसा न होगा, जो प्रसन्न हो या उनको अच्छा बतावे। इसलिये गंदे और अश्लील गीत न तो स्वयं कभी गावे तथा न जहाँ गंदे गीत गाये जाते हों, वहाँ जाये ही। यदि किसी कारणवश ऐसी जगह जाना हो जाय तो वहाँ गंदे गीत गानेवाली स्त्रियोंको विनयके साथ समझाकर रोक दे। रोकनेपर भी वे न मानें तो अवसर देखकर वहाँसे शान्तिपूर्वक चले जाना चाहिये। गंदे और अश्लील गीत न तो स्वयं कभी गावे, न सुने और न लड़कियोंको ही सिखावे; क्योंकि बचपनमें यदि लड़कियोंकी गंदे और अश्लील गीत गानेकी आदत पड़ जायगी तो जीवनभरके लिये उनमें खराबी आ सकती है। गंदे और अश्लील गीत गाना एक अनिष्टकारी दुर्व्यसन है और यह दुर्व्यसनी स्त्री-पुरुषोंके द्वारा चलाया हुआ है। स्त्रियोंके लिये यह बहुत ही लज्जास्पद और हानिकारक है। इसमें लाभ तो कुछ है ही नहीं। यह शास्त्रविरुद्ध है और देश तथा जातिके लिये महान् अनिष्टकारी है। बहुत कालकी पुरानी प्रथा बताकर कोई इसका समर्थन करना चाहे तो वह भी

उचित नहीं है; क्योंकि पुरानी होनेपर भी यदि कोई प्रथा शास्त्रविरुद्ध और अनिष्टकारी हो तो उसका त्याग ही कर्तव्य और हितकर है। शास्त्रविरुद्ध बुरी प्रथाका त्याग और शास्त्रानुकूल हितकारी प्रथाका ग्रहण करनेको सदा तैयार रहना चाहिये।

अनावश्यक भोजनका त्याग आवश्यक

कुछ स्त्रियाँ अज्ञानवश ऐसा मानती हैं कि अधिक भोजन करनेसे मनुष्य हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ और वीर्यवान् होता है। इस दृष्टिसे वे आग्रह करके अपने पुरुषोंको अधिक भोजन करवा दिया करती हैं, किंतु यह उनकी भूल धारणा है। अतः स्त्रियोंसे निवेदन है कि वे न तो स्वयं ही स्वाद या हितकी भावनासे अधिक भोजन करें और न पुरुषोंको ही आग्रहपूर्वक अधिक भोजन करावें। आसानीसे जितना पच सके, उतना ही खाना-खिलाना चाहिये; बल्कि भूखसे कुछ कम आहार करना ही लाभदायक होता है। उससे अन्नका भलीभाँति परिपाक होता है और बल, बुद्धि, तेज, तुष्टि-पुष्टि आदिकी वृद्धि होती है। स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे पतिके इच्छानुसार उत्तम भोजन बनावें तथा उसकी इच्छाके अनुसार ही परोसें। आग्रहपूर्वक अधिक परोसनेसे या तो वह जूँठ छोड़ेंगे या अधिक खा लेंगे तो उसका विषके तुल्य बुरा परिणाम होगा और नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होंगे। मनुस्मृतिमें बतलाया है—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात् तत् परिवर्जयेत्॥

(२।५७)

'अधिक भोजन करना आरोग्य, आयु, स्वर्ग और पुण्यका नाशक तथा लोकनिन्दित है, इसलिये उसे त्याग दे।'

लज्जाशीलता और पर-पुरुषका त्याग

स्त्रियोंको शास्त्रमर्यादा और लोकमर्यादाकी रक्षापर भी विशेष ध्यान रखना चाहिये। कोई भी ऐसा कार्य न करे, जिससे शास्त्रकी अवहेलना हो तथा लोकमें निन्दा हो। ससुराल और नैहर दोनों कुलोंकी कानि रखनी चाहिये। वस्त्र इस ढंगके पहनने चाहिये, जिससे नाभि और स्तन विशेषरूपसे ढके रहें। ऐसे महीन वस्त्र कभी नहीं पहनने चाहिये, जिससे वस्त्रके अंदरसे अपने अङ्ग दूसरोंको दीखें और लज्जाकी हानि हो; क्योंकि स्त्रियोंके लिये किसी भी प्रकारसे अपने अङ्ग दूसरे पुरुषोंको दिखाना शास्त्रनिषिद्ध और हानिकारक है। स्त्रियोंको अपनी लज्जा-रक्षाके लिये दो वस्त्र तो सदा पहने रहना चाहिये। एक साड़ी और दूसरा कमरसे ऊपर गलेतकको ढके रहनेवाला सिला हुआ कवजा आदि वस्त्र। इसके कई प्रकार होते हैं, उनमें सादे-से-सादा फैशनसे रहित प्रकार अपनाना चाहिये। साड़ीके नीचे लहँगा रहे तो और भी उत्तम है। जहाँ केवल लहँगेका रिवाज है, वहाँ एक तीसरा ओढ़नेका वस्त्र भी हमेशा रखना आवश्यक है। बाहर जाते समय साड़ी पहननेवाली स्त्रीको भी ओढ़नेके वस्त्रका व्यवहार करना चाहिये। स्त्रियोंको लज्जापर विशेष ध्यान देना चाहिये; क्योंकि स्त्रियोंके लिये लज्जा ही भूषण है। बृहद्धर्मपुराणका वचन है—

गृहेषु तनया भूषा भूषा संसत्सु पण्डिताः।
सुबुद्धिः पुंसु भूषा स्यात् स्त्रीषु भूषा सलज्जता॥

(पूर्वखण्ड ४। ३०)

'गृहस्थके घर भूषण बालक हैं, सभाओंमें पण्डित भूषण हैं, मनुष्योंमें भूषण श्रेष्ठ बुद्धि है और स्त्रियोंमें भूषण लज्जा है।'

अपण्डितो मृतो विप्रो मृतो यज्ञो ह्यदक्षिणः।
मृता सभा सुधीहीना मृता नारी गतत्रपा॥
(पूर्व० ४। ३१)

'मूर्ख विप्र मरे हुएके समान हैं, बिना दक्षिणाके यज्ञ निष्फल है, बुद्धिमानोंसे शून्य सभा निष्फल है और लज्जाहीन नारी मृतकके समान है।'

अस्वतन्त्रा भवेन्नारी सलज्जा स्मितभाषिणी।
अनालस्या सदा स्निग्धा मितवाग्लोभवर्जिता॥
(उत्तरखण्ड ८। २)

'स्त्रीको स्वच्छन्दतासे शून्य, लज्जायुक्त, मन्द मुसकानसहित वाणी बोलनेवाली, आलस्यरहित, सदा प्रेमपूर्वक परिमित भाषण करनेवाली और लोभसे हीन होना चाहिये।'

चाणक्य-नीतिमें भी कहा है—

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभृतः।
सलज्जा गणिका नष्टा निर्लज्जाश्च कुलाङ्गनाः॥
(८। १७)

'असंतोषी ब्राह्मण नष्ट हो जाते हैं अर्थात् ब्राह्मणत्वसे गिर जाते हैं और संतोष करनेवाले राजागण नष्ट हो जाते हैं अर्थात् कुछ कर लिये बिना राज्य नहीं चल सकता। वेश्या लज्जा करनेसे नष्ट हो जाती हैं अर्थात् वेश्यापन नहीं चल सकता और कुलीन स्त्रियाँ लज्जाका त्याग करनेसे नष्ट हो जाती हैं अर्थात् उनका पतन हो जाता है।'

अतएव स्त्रियोंको सदा लज्जाशील होना चाहिये तथा उनको अपनी लज्जाका ध्यान रखकर पुरुषोंके संसर्गसे सदा बचना चाहिये। किसी भी परपुरुषके सामने नाचना, गाना, अश्लील हाव-भाव, कटाक्ष-युक्त दृष्टि और उनसे हँसी-मजाक तो करे ही नहीं, उनके साथ अनावश्यक मिले-जुले भी नहीं और न पुरुषोंकी गोष्ठीमें ही रहें; क्योंकि स्त्रियोंको परपुरुषोंके साथ किसी भी प्रकारके सम्पर्कमें आना शास्त्रनिषिद्ध है। अतएव स्त्रियोंको आठ प्रकारके मैथुनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। आठ प्रकारके मैथुन ये हैं—

> स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
> संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
> एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
> विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

'परपुरुष (के रूप-लावण्य आदिका और अश्लील बातों) का स्मरण करना, उनके सम्बन्धमें कथन करना, उनकी ओर देखना, उनके साथ हँसी-मजाक या क्रीडा करना, उनके साथ गुप्त बातें करना, उनसे एकान्तमें मिलनेका संकल्प करना, प्रयत्न करना और सहवास करना—इस प्रकार आठ प्रकारका मैथुन मनीषी पुरुष बतलाते हैं। इन आठोंसे जो रहित है, वही आठ लक्षणोंवाला ब्रह्मचर्य है।'

अतः स्त्रियोंसे प्रार्थना है कि वे पिता, भाई और पुत्रके साथमें भी कभी एकान्तवास न करें, क्योंकि इन्द्रियोंका समूह बलवान् है, वह विद्वान् मनुष्यके मनको भी हर लेता है, फिर अबला स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है। मनुजीने कहा है—

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥
(२ । २१५)

'पुरुषको चाहिये कि वह कभी माता, बहिन या लड़कीके साथ भी एकान्तमें न बैठे; क्योंकि इन्द्रियोंका समूह बड़ा बलवान् है, वह विद्वान्को भी विषय-भोगोंकी ओर खींच लेता है ।'

जिस न्यायसे पुरुषके लिये माता, बहिन और लड़कीके साथ एकान्तमें बैठनेका निषेध है, उसी न्यायसे स्त्रीके लिये पिता, भाई और पुत्रके साथ एकान्तमें बैठनेका निषेध समझना चाहिये । इसलिये स्त्रियोंको किसी भी पर-पुरुषके पास एकान्तमें नहीं बैठना चाहिये । जो स्त्रियाँ पर-पुरुषोंको मोहित करके कुकर्म करती हैं, वे भयानक नरकोंको जाती हैं । श्रीमनुजीने कहा है—

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥
(९ । ३०)

'व्यभिचार करनेसे स्त्रीकी इस लोकमें निन्दा होती है और मरनेके बाद वह सियार-योनिमें उत्पन्न होती है तथा बुरे-बुरे रोगोंसे पीड़ित होती है ।'

जो दूसरी स्त्रियोंको कुकर्ममें लगाती हैं, वे तो उससे भी बढ़कर पापकी भागिनी होती हैं । पक्षान्तरमें जो स्त्रियाँ दूसरी स्त्रियोंको कुकर्मसे हटाकर अच्छे रास्तेपर लाती हैं, वे पुण्यकी भागिनी होती हैं । अतः स्त्रियोंको चाहिये कि वे न तो स्वयं कुकर्म करें

न किसीको कुकर्मके लिये सम्मति दें, वल्कि कोई कुकर्म करती हृ तो उसे समझा-बुझाकर कुकर्मसे हटावें !

सदाचरण

स्त्रियोंको पुरुषोंकी आज्ञाके विना कभी घरके बाहर नहीं जाना चाहिये। कहीं जाना हो तो घरवालोंके साथ या घरवालोंकी आज्ञा लेकर ही जाना चाहिये। चलनेमें बहुत तेज चालसे नहीं चलना चाहिये। घरमें घरके दरवाजेपर न बैठना चाहिये और न खड़े रहना चाहिये तथा न झरोखा और खिड़कियोंसे ही पर-पुरुषोंको देखना चाहिये। दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी बातचीत भी न करे। किसीको गाली न दे, अमृतके समान हितभरे प्यारे वचन बोले; क्योंकि सुननेवालेको गाली विषके समान लगती है और मीठे वचन अमृतके तुल्य। गाली देनेसे देनेवालेको कोई लाभ नहीं होता, बल्कि उसके तपका तथा वाणीकी पवित्रताका क्षय होता है। अतः किसीको गाली देना स्वयं अपनी ही हानि करना है। गाली देनेपर झगड़े हो जाते हैं, मार-पीट हो सकती है और आगे चलकर मुकद्दमे-मामले भी चल जाते हैं, जिनमें धन, धर्म, स्वास्थ्य और इज्जत आदिकी सब प्रकारसे हानि होती है और अन्तमें जब बुद्धि ठिकाने आती है, तब पश्चात्ताप भी करना पड़ता है। परलोकमें नरकादि-भोग तथा बुरी योनियोंकी प्राप्ति होती है, सो अलग। इसलिये स्त्रियोंको चाहिये कि कोई दूसरा अपनेको गाली दे तब भी बदलेमें उसे गाली न दें, बल्कि उसे क्षमा कर दें और स्वयं शान्ति रक्खें। जो अपराध करनेवालोंको क्षमा करके शान्ति रखता है, उसकी शास्त्रकारोंने बड़ी प्रशंसा की है। महाभारतमें कहा है—

शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥
(उद्योग० ३३ । ५५)

'जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है, दुर्जन उसका क्या बिगाड़ सकता है? जिस प्रकार बिना घासकी जगहपर गिरी हुई आग जलानेके लिये कुछ भी न मिलनेके कारण स्वयं ही शान्त हो जाती है, उसी प्रकार शान्ति रखनेवालेका वैरी भी कुछ नहीं कर सकता, बल्कि स्वयं ही शान्त हो जाता है।'

कन्याओंको उत्तम शिक्षा

स्त्रियोंको उचित है कि लड़कियोंको छोटी अवस्थामें ही उत्तम शिक्षा दें। अपने सास-ससुर, पति और बड़ोंको विनयपूर्वक नमस्कार करने तथा उनकी सेवा और आज्ञा-पालन करनेका उपदेश दें, जिससे वे ससुरालमें जाकर अपने सास-ससुर, पति और बड़ोंको नियमपूर्वक नमस्कार करने तथा उनकी सेवा और आज्ञा-पालन करनेमें सदा तत्पर रहें। साथ ही ननद, देवरानी, जेठानी आदि घरकी अन्य स्त्रियोंके साथ यथायोग्य प्रेमका बर्ताव करनेका आदेश दें, जिससे वे किसीके साथ भी वैर-विरोध न करके सदा सबके साथ विनयपूर्वक प्रेमभरा बर्ताव करें और किसीको कभी कटुवचन न कहें, बल्कि सदा सबके प्रति अमृतमय, परिमित, हितभरे वचनोंका ही प्रयोग करें। किसी कविने कहा है—

कुटिल बचन सबसे बुरा जार करै तनु छार।
साधु बचन जलरूप है बरसै अमृत धार ॥

इसी प्रकार स्त्रियोंको चाहिये कि कन्याओंको बचपनसे ही रसोई बनाना, परोसना, सीना-पिरोना, चर्खा कातना, घरकी चीजोंकी सम्हाल रखना, झाड़-बुहार कर घरको साफ-सुथरा रखना आदि घरके काम-काज तथा शिल्पकार्य भी सिखावें। इस प्रकारकी उत्तम सीख पाकर जो लड़की घरके सब काम-काज चतुरताके साथ आलस्यरहित होकर करने लगेगी, उसके ससुरालवाले उसका विशेष आदर करेंगे और उसके माता-पिताको धन्यवाद देंगे।

आलस्य-प्रमादका त्याग आवश्यक

स्त्रियोंको स्वयं भी आलस्यरहित होकर अपने सास-ससुर, पति और बड़ोंको विनयपूर्वक नमस्कार, उनकी सेवा तथा आज्ञाका पालन एवं घरके सब काम-काज प्रेमपूर्वक उत्साहके साथ करने चाहिये। ऐसा करनेसे इस लोकमें तो उत्तम कीर्ति, घरमें सुव्यवस्था तथा जीवनमें सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है और मरनेपर उत्तम गति मिलती है। आजकल धनी घरानेकी या पढ़ी-लिखी जो स्त्रियाँ कामकाज छोड़कर पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रहती हैं, या तितलीकी भाँति मौज-शौकमें इधर-उधर उड़ती फिरती हैं, वे शौकीन स्त्रियाँ एक प्रकारसे निकम्मी हो जाती हैं, उनसे काम-काज छूट जाता है तथा कई प्रकारके अन्य दोष उनमें आ जाते हैं। इसलिये अकर्मण्य तथा विलासी हो जानेके कारण उन्हें अनेक प्रकारकी बीमारियाँ घेर लेती हैं। इससे यह समझना चाहिये कि जो शौकीन तथा नाजुक-मिजाज है, वह बीमार है। इस प्रकार उद्यमहीन होकर बैठनेवाली तथा सैर-सपाटे करनेवाली स्त्रियोंकी इस लोकमें तो निन्दा होती है और मरनेपर दुर्गति होती है। अतः सभी स्त्रियोंसे प्रार्थना है कि वे सदा अपने

कर्तव्य-कर्मोंको मन लगाकर करें । इस प्रकार अपनी सास और माताको जब घरकी बहू-बेटियाँ गृहकार्यमें तत्पर और बड़ोंकी सेवा करती हुई देखेंगी, तब उनका भी गृहकार्य और बड़ोंकी सेवामें प्रेम होगा; क्योंकि जो कार्य बड़ोंको करते हुए देखा जाता है, उसका बिना सिखलाये ही घरके बालक-बालिकाओंपर असर पड़ता है। अतः समझदार स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे स्वयं शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार आलस्य छोड़कर उत्तम-से-उत्तम कार्य करें, जिससे बिना सिखलाये ही बालक-बालिकाओंपर स्वाभाविक ही अच्छा असर पड़े। इस प्रकार स्वयं आचरण करते हुए उनको शिक्षाकी बातें कही जायँ तो उनका बहुत ही अच्छा असर पड़ता है।

विद्याकी उपादेयता

स्त्रियोंको अपने बालक-बालिकाओंको बचपनमें ही विद्या पढ़नेकी भी शिक्षा देनी चाहिये। स्वयं माता-पिताका यह कर्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको पूरे प्रयत्नके साथ पढ़ावें; क्योंकि बालक-अवस्थामें ही विद्या पढ़ी जा सकती है, बड़ी अवस्था होनेपर पढ़ना कठिन है। विद्या पढ़कर बालक निपुण हो जाता है तो उसका सब जगह आदर होता है, उसकी जीविका ठीक तरहसे चलती है और उसका जीवन सुखी हो जाता है। विद्या न पढ़नेसे बालक मूर्ख रह जाता है, जीविका भाररूप हो जाती है, जगह-जगह अपमान होता है तथा बड़ा होनेपर फिर चेष्टा करनेपर भी विद्या नहीं आती। अपने पुत्रको मूर्ख और पण्डित बनाना माता-पिताके ही हाथ है। वे यदि चेष्टा रखकर उसे पढ़ावें तो वह विद्वान् और निपुण बन सकता है; क्योंकि बचपनमें माता-पिता और गुरुके द्वारा प्राप्त की हुई शिक्षाका

प्रायः सदा स्मरण रहता है। जो माँ-बाप अपने बालकोंको शिक्षा नहीं देते, विद्या नहीं पढ़ाते, वे शत्रुके समान हैं। चाणक्यनीतिमें बतलाया है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥
(२।११)

'वह माता शत्रु और पिता वैरीके तुल्य है, जिन्होंने अपने बालकको पढ़ाया नहीं; क्योंकि वह बिना पढ़ा हुआ बालक विद्वानोंकी सभामें वैसे ही शोभा नहीं पाता, जैसे हंसोंके बीच बगुला।'

विद्यामें अनेक गुण हैं। सब धनोंमें विद्या एक सर्वोत्तम धन है। इसे न कोई छीन सकता है, न खरीद सकता है और न इसका नाश ही हो सकता है। कहा भी है—

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥

'सम्पूर्ण द्रव्योंमें विद्याको ही सर्वोत्तम द्रव्य कहते हैं; क्योंकि यह सदा-सर्वदा अहार्य अर्थात् न छीना जा सकनेवाला, अनर्घ्य अर्थात् खरीदा न जा सकनेवाला और अक्षय अर्थात् कभी नाश न होनेवाला है।'

न चोरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

कर्तव्य-कर्मोंको मन लगाकर करें। इस प्रकार अपनी सास और माताको जब घरकी बहू-बेटियाँ गृहकार्यमें तत्पर और बड़ोंकी सेवा करती हुई देखेंगी, तब उनका भी गृहकार्य और बड़ोंकी सेवामें प्रेम होगा; क्योंकि जो कार्य बड़ोंको करते हुए देखा जाता है, उसका बिना सिखलाये ही घरके बालक-बालिकाओंपर असर पड़ता है। अतः समझदार स्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे स्वयं शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार आलस्य छोड़कर उत्तम-से-उत्तम कार्य करें, जिससे बिना सिखलाये ही बालक-बालिकाओंपर स्वाभाविक ही अच्छा असर पड़े। इस प्रकार स्वयं आचरण करते हुए उनको शिक्षाकी बातें कही जायँ तो उनका बहुत ही अच्छा असर पड़ता है।

विद्याकी उपादेयता

स्त्रियोंको अपने बालक-बालिकाओंको बचपनमें ही विद्या पढ़नेकी भी शिक्षा देनी चाहिये। स्वयं माता-पिताका यह कर्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको पूरे प्रयत्नके साथ पढ़ावें; क्योंकि बालक-अवस्थामें ही विद्या पढ़ी जा सकती है, बड़ी अवस्था होनेपर पढ़ना कठिन है। विद्या पढ़कर बालक निपुण हो जाता है तो उसका सब जगह आदर होता है, उसकी जीविका ठीक तरहसे चलती है और उसका जीवन सुखी हो जाता है। विद्या न पढ़नेसे बालक मूर्ख रह जाता है, जीविका भाररूप हो जाती है, जगह-जगह अपमान होता है तथा बड़ा होनेपर फिर चेष्टा करनेपर भी विद्या नहीं आती। अपने पुत्रको मूर्ख और पण्डित बनाना माता-पिताके ही हाथ है। वे यदि चेष्टा रखकर उसे पढ़ावें तो वह विद्वान् और निपुण बन सकता है; क्योंकि बचपनमें माता-पिता और गुरुके द्वारा प्राप्त की हुई शिक्षाका

प्रायः सदा स्मरण रहता है। जो माँ-बाप अपने बालकोंको शिक्षा नहीं देते, विद्या नहीं पढ़ाते, वे शत्रुके समान हैं। चाणक्यनीतिमें बतलाया है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥
(२।११)

'वह माता शत्रु और पिता वैरीके तुल्य है, जिन्होंने अपने बालकको पढ़ाया नहीं; क्योंकि वह बिना पढ़ा हुआ बालक विद्वानोंकी सभामें वैसे ही शोभा नहीं पाता, जैसे हंसोंके बीच बगुला।'

विद्यामें अनेक गुण हैं। सब धनोंमें विद्या एक सर्वोत्तम धन है। इसे न कोई छीन सकता है, न खरीद सकता है और न इसका नाश ही हो सकता है। कहा भी है—

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥

'सम्पूर्ण द्रव्योंमें विद्याको ही सर्वोत्तम द्रव्य कहते हैं; क्योंकि यह सदा-सर्वदा अहार्य अर्थात् न छीना जा सकनेवाला, अनर्घ्य अर्थात् खरीदा न जा सकनेवाला और अक्षय अर्थात् कभी नाश न होनेवाला है।'

न चोरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्॥

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी॥

(३ । १६)

'साधुस्वभाव, विद्यायुक्त सुपुत्र तो एक भी हो तो उससे सारा कुल वैसे ही आनन्दित हो जाता है, जैसे कि चन्द्रमासे रात्रि।'

एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः॥

(४ । ६)

'सैकड़ों गुणहीन पुत्रोंसे तो एक भी गुणी पुत्र श्रेष्ठ है; क्योंकि अकेला चन्द्रमा तो सारे अन्धकारको हर लेता है; किंतु तारे हजारों हों तो भी अन्धकार दूर नहीं होता।'

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः।
मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्॥

(४ । ७)

'मूर्ख पुत्र बहुत कालतक जीवे, तब भी उससे वही श्रेष्ठ है जो उत्पन्न होते ही मर जाता है; क्योंकि जन्मते ही मरनेवाला तो थोड़े ही दुःखका हेतु है; किंतु मूर्ख पुत्र तो जीवनपर्यन्त सदा-सर्वदा जलाता रहता है।'

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा
कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या
विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम्॥

(४ । ८)

'कुग्राममें वास, कुलहीनकी सेवा, कुभोजन और क्रोध करनेवाली स्त्री तथा मूर्ख पुत्र एवं विधवा कन्या—ये छहों बिना ही आगके शरीरको जलाते रहते हैं।'

सद्गुणोंकी शिक्षा

इसलिये अपने बालक-बालिकाओंको वाणीके द्वारा तथा आचरणोंके द्वारा ऐसी शिक्षा देनी चाहिये कि जिससे वे सत्यवादी, सदाचारी, सद्गुण-सम्पन्न, दुखी और बड़ोंकी सेवा करनेवाले, धर्मभीरु, ईश्वरभक्त, लोक और शास्त्र-मर्यादाके अनुसार चलनेवाले, अच्छे स्वभाववाले और परिश्रमशील बनकर माता-पिता आदि गुरुजनोंका, कुटुम्बका और देशका कल्याण करनेवाले हों।

कई माता-पिता अधिक लाड़-प्यारके कारण अपने बालकोंको नहीं पढ़ाते और उनपर मिथ्या दया करके न हितभरी उचित ताड़ना ही देते हैं; किंतु वास्तवमें यह दया और अनुचित दुलार हानिकारक है। नीतिका वचन है—

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥

(चाणक्यनीति २। १२)

'(अनुचित) दुलारसे बहुत दोष उत्पन्न होते हैं तथा ताडना करनेसे अनेक गुण। इसलिये पुत्र तथा शिष्यको ताडना दे, उनका अनुचित दुलार न करे।'

लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रत्वमाचरेत्॥

(३। १८)

'पुत्रका पाँच वर्षतक दुलार करे और दस वर्षतक ताडना दे यानी उसे नियन्त्रणमें रक्खे—उच्छृङ्खल न होने दे; किंतु सोलह वर्षका हो जानेपर पुत्रके साथ मित्रताका व्यवहार करे।'

माता-पिताको उचित है कि अपने लड़केको विशेषरूपसे तैयार करे। यदि लड़का भगवान्‌का भक्त, योगी या ज्ञानी होता है तो माता-पिताका उद्धार कर देता है। सुमित्राने लक्ष्मणको भक्तिका उपदेश किया, मैनावतीने गोपीचन्दको योगका उपदेश दिलाया और मदालसाने अपने पुत्रोंको ज्ञानका उपदेश देकर उन्हें ज्ञानी बना दिया; इससे वे सब माताएँ स्वयं उत्तम गतिको प्राप्त हुईं। किसी कविने कहा भी है—

जननी जनै तो भक्त जन कै दाता कै सूर।
नाहीं तो तू बाँझ रह मती गवाँवै नूर॥

'हे जननी! तू पुत्र पैदा करे तो या तो ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि-जैसा भक्त पैदा कर अथवा शिबि, दधीचि आदिकी तरह दाता पैदा कर अथवा शिवाजी, महाराणा प्रताप-जैसा शूरवीर पैदा कर। यदि ऐसा नहीं करती तो तू बाँझ ही रह, बालक पैदा करके अपना रूप ही क्यों गँवाती है।'

इसलिये बालकोंको बचपनसे ही ईश्वरकी भक्ति, पूजा, बड़ोंकी सेवा, आज्ञापालन, नमस्कार आदि उत्तम आचरणोंकी शिक्षा दें तथा झूठ, कपट, चोरी, हिंसा आदि बुरे आचरणोंका त्याग करके न्याय-पूर्वक धन उपार्जन करनेकी शिक्षा दें। इस प्रकार उत्तम शिक्षासे अच्छे संस्कार जमते हैं तथा उस शिक्षाके अनुसार आचरण करनेसे

आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है तथा निष्कामभावसे करनेपर कल्याण हो जाता है। बड़ोंकी सेवा और उनको प्रतिदिन प्रणाम करनेसे लाभ होता है, इस विषयमें मनुजी कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

(२। १२१)

'जो प्रतिदिन बड़ोंको प्रणाम करता और बड़ोंकी सेवा करता है, उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल—ये चारों बढ़ते हैं।'

बालकोंको ऐसी शिक्षा देनी चाहिये, जिससे वे सत्य, प्रिय, मधुर, हितकर, परिमित और अमृतमय वचन बोलें। झूठे, कठोर, अप्रिय, अहितकर वचन कभी न बोलें; क्योंकि वाणीमें ही अमृत है और वाणीमें ही विष है। सत्य, प्रिय और मधुर वाणीसे लोग मित्र हो जाते हैं और उनसे विपरीत असत्य, अप्रिय वाणीसे शत्रु हो जाते हैं। श्रीमनुमहाराजने कहा है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

(४। १३९)

'सत्य बोले, प्रिय बोले; किंतु सत्य होनेपर भी जो अप्रिय हो वह न बोले तथा प्रिय होनेपर भी असत्य हो तो वह भी न बोले, यह सनातन धर्म है।'

तथा—

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।
स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्॥

(महा० शान्ति० १६२। २४)

'सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और असत्यसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। धर्म सत्यके आश्रयसे ही टिकता है अतएव सत्यका कभी लोप नहीं करना चाहिये।'

चाणक्यनीतिमें सत्यकी महिमा कहते हुए बतलाया है—

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

(५। १९)

'सत्यके द्वारा पृथ्वी धारण की हुई है, सत्यसे ही सूर्य तपते हैं और सत्यसे ही वायु बहता है। सब कुछ सत्यमें ही स्थित है।' और भी कहा है—

सत्य बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप॥

जो मनुष्य सच्ची बात मीठे शब्दोंमें कहता है उससे सुननेवालेका चित्त प्रसन्न होता है और वह उसके अनुकूल हो जाता है। कहा है—

तुलसी मीठे वचनसे सुख उपजत चहुँ ओर।
वसीकरन यह मन्त्र है तज दो बचन कठोर॥
सबसों हिलमिल बोलिये मीठे मीठे बोल।
मीठी बोली बोलकर बनो मित्र अनमोल॥

द्विज बालकोंका यज्ञोपवीत-संस्कार आवश्यक

माता-पिताको अपने बालकोंके शास्त्रमें बतलाये हुए सोलह संस्कारोंमेंसे जितने अधिक-से-अधिक हो सकें, करवाने चाहिये, जिससे उनके हृदयपर अच्छे संस्कार जमें। द्विजातिको उचित है कि अपने

लड़केका यज्ञोपवीत-संस्कार तो यथासमय अवश्य ही करवावे और नित्य शौच-स्नान आदि करके यथाधिकार संध्या, गायत्रीजप, पूजा, प्रार्थना आदि नित्य उपासना-कर्म करनेकी शिक्षा दे। द्विजाति हो तो अपनी लड़कीका यज्ञोपवीतरहित व्यक्तिके साथ विवाह न करे। श्रीमनुजीने कहा है—

नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणः सह ॥
(२।४)

'ब्राह्मण इन अपवित्र व्रात्योंके साथ आपत्तिकालमें भी नियमानुसार ब्राह्म (पठन-पाठन) और यौन (विवाह आदि) सम्बन्ध कदापि न करे।'

आजकल बहुत-से वैश्योंके यहाँ यज्ञोपवीत-संस्कार नहीं होता। पूछनेपर वे कहते हैं कि 'पूर्वमें हमारे घरमें किसीने यज्ञोपवीत लिया था तो वह थोड़े समयके बाद ही मर गया, तबसे हमारे यहाँ यज्ञोपवीत लेना बंद कर दिया।' यह वस्तुतः बिल्कुल बेसमझीकी बात है और मूर्खतापूर्ण कुसंस्कार है। यज्ञोपवीत किसीके मरनेमें कैसे हेतु है? बल्कि वह तो रक्षामें ही हेतु है। यज्ञोपवीत न लेनेवाले आदमी भी मरते हैं। यदि विवाह करनेके थोड़े दिनों बाद लड़का मर जाय तो क्या हमलोग अन्य लड़कोंका विवाह करना बंद कर देंगे? ऐसे ही यज्ञोपवीतकी बात है। अतः यज्ञोपवीत न लेना अज्ञताके सिवा और क्या है।

इसलिये उन भोले-भाले स्त्री-पुरुषोंसे प्रार्थना है कि वे 'यज्ञोपवीत लेनेसे लड़का मर जाता है' इस भ्रमको हटाकर यज्ञोपवीत-संस्कारकी

उत्तम प्रथा चलावें; क्योंकि बिना यज्ञोपवीतके द्विजका न वेदोंमें अधिकार है, न संध्या और सावित्रीमें ही। उसका वेदमन्त्रोंसे तर्पण, पिण्डदान और श्राद्धकर्ममें भी अधिकार नहीं है। इसलिये अपने बालकोंका विवाहके पूर्व ही यज्ञोपवीत-संस्कार अवश्य ही करवा देना चाहिये तथा उनसे संध्या, गायत्री-जप आदि नित्य कर्मोंको करनेका अभ्यास कराना चाहिये। नित्यकर्म करनेसे मनुष्यकी आयु, कीर्ति और बलकी वृद्धि होती है, बुद्धि शुद्ध होती है एवं वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। अतएव बालकोंको प्रातःकाल उठकर शौच-स्नानसे निवृत्त होकर संध्या आदि नित्यकर्म करनेकी शिक्षा अवश्य ही देनी चाहिये। मनुस्मृति बतलाती है—

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः।
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम्॥
ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयुः।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च॥
(४। ९३-९४)

'द्विजातिको चाहिये कि शय्यासे उठकर आवश्यक शौच-स्नानादि करके पवित्र हो जाय और सावधान होकर दोनों कालोंकी संध्याके लिये शास्त्रमें बतलाये हुए कालमें अर्थात् सूर्योदयसे पूर्व प्रातःसंध्या और सूर्यास्तसे पूर्व सायं-संध्या करे तथा बहुत देरतक गायत्रीका जप करता रहे; क्योंकि ऋषियोंने बहुत कालतक संध्या करनेसे बड़ी आयु, बुद्धि, यश और कीर्ति तथा ब्रह्मतेज भी प्राप्त किया।'

विपत्तिमें भी धर्मका त्याग न करे

माता-बहिनोंको भारी आपत्ति आनेपर भी धर्मकी मर्यादाका कभी त्याग नहीं करना चाहिये। श्रीमहाभारतमें बतलाया है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।
(उद्योग० ३८ । १२-१३)

'मनुष्यको किसी भी समय कामसे, भयसे, लोभसे या जीवन-रक्षाके लिये भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं तथा जीव नित्य है और जीवनका हेतु अनित्य है।'

जगज्जननी सीताने भारी आपत्ति पड़नेपर भी अर्थात् रावणके द्वारा विशेष लोभ और भय दिखलानेपर भी अपने धर्मका त्याग नहीं किया, बल्कि प्राणोंके त्यागका विचार कर लिया। यद्यपि सीता जगज्जननी थीं; किंतु उनका आचरण लोगोंको शिक्षा देनेके लिये था। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम तथा सीताने लोगोंको शिक्षा देनेके लिये ही अवतार ग्रहण किया था। अतः उनका यथाशक्ति अनुकरण करनेके लिये विशेष चेष्टा करनी चाहिये। इस संसारसे मरनेके बाद एक धर्म ही साथ जाता है और वही इस संसारसे पार उतारता है। अतः धर्मका पालन अवश्य करना चाहिये। श्रीमनुजी कहते हैं—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥
(४ । २३९—२४२)

'परलोकमें मनुष्यकी सहायता करने न माता और पिता आते हैं तथा न पुत्र, स्त्री एवं जातिवाले ही, वहाँ तो केवल एक धर्म ही काम आता है। जीव अकेला ही जन्मता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही किये हुए पुण्यका और अकेला ही पापका फल भी भोगता है। भाई-बन्धु तो मरे हुए शरीरको काठ और मिट्टीके ढेलेके समान (जलाकर) वहीं पृथ्वीपर ही छोड़कर वापस लौट जाते हैं, उस समय केवल धर्म ही उस प्राणीके साथ जाता है। इसलिये परलोकमें सहायताके लिये यहाँ प्रतिदिन शनैःशनैः धर्मसंचय करे; क्योंकि धर्मकी सहायतासे मनुष्य दुस्तर अन्धकारमय नरकादिसे तर जाता है।'

चाणक्यनीतिमें भी कहा है—

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चले जीवितमन्दिरे।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः॥

(५ । २०)

'यह लक्ष्मी चञ्चल है, ये प्राण भी चले जानेवाले हैं और यह जीवन तथा घर भी नाशवान् हैं। इस चराचर संसारमें एक धर्म ही निश्चल (अविनाशी) है।'

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

(१२ । १२)

'ये शरीर अनित्य अर्थात् नाशवान् हैं तथा यह वैभव भी सदा रहनेवाला नहीं है एवं यह मृत्यु नित्य पास ही खड़ी रहती है; अतः धर्मका संग्रह करना चाहिये।'

पातिव्रत्य-धर्म

अब पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म बतलाये जाते हैं। सुहागिन स्त्रियोंके लिये पतिसेवा ही सब कुछ है, इसलिये उन्हें श्रद्धा-प्रेमके साथ पतिसेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये; क्योंकि श्रद्धा-प्रेमसे किया हुआ कार्य ही शीघ्र फलदायक होता है। फिर जो स्त्री निष्कामभावसे पतिकी सेवा करती है, उससे शीघ्र ही अन्तःकरणकी शुद्धि होकर परमात्मा-की प्राप्ति हो जाती है, अतः स्त्रीको अपने पतिकी सेवा निष्काम भावसे ही करनी चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रीके लिये पति ही सर्वस्व है, उसके लिये पति-सेवाकी तुलनामें यज्ञ, दान, तप, तीर्थ, व्रत, उपवास, देवपूजन, सेवा आदि सब मिलकर भी कुछ नहीं है। स्त्रीको चाहिये कि तीर्थ, व्रत, पूजन आदि सब पतिके साथ ही करे या पतिकी आज्ञासे स्वयं करे। पतिकी आज्ञाके बिना न तो कथा-कीर्तनमें, न साधु-महात्माओंके पास तथा न देवमन्दिर और तीर्थमें ही जाय। जहाँ भी जाय, यथासम्भव अपने पतिके साथ ही जाय, अकेली नहीं। पतिके बिना स्वच्छन्दतापूर्वक यज्ञ, दान, तप, व्रत, तीर्थ आदि करनेका स्त्रीके लिये निषेध है; क्योंकि उसको केवल एक पतिसेवासे ही सब प्रकार पूर्ण सफलता मिल जाती है।

पद्मपुराणमें कहा है—

युवतीनां पृथक् तीर्थं विना भर्तुर्द्विजोत्तम।
सुखदं नास्ति वै लोके स्वर्गमोक्षप्रदायकम्॥
(भूमि० ४१। १२)

सुकलाने अपने पतिसे कहा—'द्विजोत्तम! युवतियोंके लिये पतिके सिवा अन्य कोई ऐसा तीर्थ नहीं जो इस लोकमें सुख देने-वाला और परलोकमें स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला हो।'

आगे चलकर सुकला अपनी सखियोंसे भी कहती है—

भर्तुः सार्द्धं सदा सख्यो दृष्टो वेदेषु सर्वदा ।
सम्बन्धः पुण्यसंसर्गाज्जायते नान्यकारणात् ॥
नारीणां च सदा तीर्थं भर्ता शास्त्रेषु पठ्यते ।
यमेवावाहयेन्नित्यं वाचा कायेन कर्मभिः ॥
मनसा पूजयेन्नित्यं सत्यभावेन तत्परा ।
एतत्पार्श्वं महातीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि ॥
तमाश्रित्य यदा नारी गृहस्था परिवर्तते ।
यजते दानपुण्यैश्च तस्य दानस्य यत् फलम् ॥
वाराणस्यां च गङ्गायां यत् फलं न च पुष्करे ।
द्वारकायां न चावन्त्यां केदारे शशिभूषणे ॥
लभते नैव सा नारी यजमाना सदा किल ।

(भूमि० पद्म० ४१ । ६१—६६)

'सखियो ! वेदोंमें सदा-सर्वदा यही बात देखी गयी है कि पतिके साथ नारीका सम्बन्ध पुण्यके संसर्गसे ही होता है, अन्य किसी कारणसे नहीं । शास्त्रोंका वचन है कि नारियोंके लिये पति ही सदा तीर्थ है । इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह सच्चे भावसे पतिसेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और तत्पर होकर श्रेष्ठ भावसे सदा पतिका ही पूजन करे । पति स्त्रीका दक्षिण अङ्ग है और उसका वाम पार्श्व ही पत्नीके लिये सदा महान् तीर्थ है । जब गृहस्थ नारी पतिके वाम भागमें बैठकर दान-पुण्योंसे पूजन करती है, उसका जो फल बताया गया है, वह फल काशीकी गङ्गा, पुष्करतीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन

तथा केदार नामसे प्रसिद्ध महादेवजीके तीर्थमें स्नान और पूजन करनेसे भी कभी नहीं मिल सकता ।'

सुसुखं पुत्रसौभाग्यं स्नानं दानं च भूषणम् ।
वस्त्रालंकारसौभाग्यं रूपं तेजः फलं सदा ॥
यशः कीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनि ।
भर्तुः प्रसादाद्धच्च सर्वं लभते नात्र संशयः ॥
(पद्म० भूमि० ४१ । ६७-६८)

'पतिव्रता स्त्री उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान और श्रेष्ठ दान, वस्त्र तथा आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, यश, कीर्ति और उत्तम गुण प्राप्त करती है । हे वरवर्णिनि ! पतिकी प्रसन्नतासे उसे सब कुछ मिल जाता है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।'

तुष्टे भर्तरि तस्यास्तु तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः ।
तुष्टे भर्तरि तुष्यन्ति ऋषयो देवमानवाः ॥
भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह ।
भर्ता तीर्थं च पुण्यं च नारीणां नृपनन्दन ॥
(पद्म० भूमि० ४१ । ७४-७५)

'पति संतुष्ट रहते हैं तो समस्त देवता उस स्त्रीपर संतुष्ट रहते हैं और पतिके संतुष्ट रहनेपर ऋषि-मुनि, देवता और मनुष्य भी प्रसन्न रहते हैं । राजन् ! पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु एवं पति ही देवताओंसहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ तथा पुण्य है ।'

श्रीबृहद्धर्मपुराणमें भी लिखा है—

सधवानां हि नारीणां नोपवासादिकं व्रतम् ।
पत्याज्ञया चरेद् यत्तु तत्तु तासां व्रतं परम् ॥
(उत्तरखण्ड ८ । ७)

'सधवा स्त्रियोंके लिये उपवास आदि किसी व्रतका विधान नहीं है; क्योंकि पतिकी आज्ञासे वे जो कुछ आचरण करती हैं, वही उनके लिये श्रेष्ठ व्रत है।'

इसलिये मनुजीने यही व्यवस्था दी है कि—

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एष धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्रीपुंसयोः परः॥
(९। १०१)

'संक्षेपमें पति-पत्नीका यह परम धर्म समझना चाहिये कि वे जीवनपर्यन्त एक-दूसरेसे कभी अलग न हों।'

इस विषयमें जगज्जननी सीताजी आदर्श हैं। पतिव्रताशिरोमणि सीताजीका पतिकी सेवा करने और उनके साथ रहनेमें कितना आग्रह था, यह उनके आचरण और वचनोंसे ही स्पष्ट है। वन-गमनके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने वनके भयानक कष्टोंका वर्णन करके सीताजीको अयोध्यामें रहनेके लिये कहा, किंतु सीताजीने उत्तरमें बहुत ही विनय और प्रेमपूर्वक साथ ले चलनेका अनुरोध किया तथा समस्त सुख और भोगोंका तिनकेके समान त्याग करके वे श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें चली गयीं। श्रीरामचरितमानसमें उस समय श्रीरामचन्द्रजीके प्रति सीताजीने जो वचन कहे, वे ध्यान देने योग्य हैं। उनसे स्त्रियोंको बड़ी उत्तम शिक्षा मिलती है। श्रीसीताजी कहती हैं—

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥

× × × ×

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥

× × × ×

छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥

× × × ×

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥

केवल पतिसेवासे ही स्त्री परम गतिको प्राप्त हो जाती है। तुलसीकृत रामायणमें जगज्जननी सीताके प्रति पातिव्रत्यका उपदेश देती हुई अनसूयाजी कहती हैं—

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा। कायँ बचन मन पति पद प्रेमा॥

× × × ×

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

अधम परपति देखइ कैसें। भ्राता पिता पुत्र निज जैसें॥

× × × ×

पति बंचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

× × × ×

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

श्रीअनसूयाजीका यह कहना उचित ही है; क्योंकि सीताजी तो पहलेसे ही ऐसी ही थीं। श्रीवाल्मीकीय रामायणमें श्रीसीताजीके प्रति श्रीअनसूयाजीके वचन हैं—

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानवृद्धिं च मानिनि।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि॥
नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः॥
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥
नातो विशिष्टं पश्यामि बान्धवं विमृशन्त्यहम्।
सर्वत्र योग्यं वैदेहि तपः कृतमिवाव्ययम्॥

(अयोध्या० ११७। २०-२३)

'माननीया सीते! यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर और उनसे प्राप्त होनेवाली मान-प्रतिष्ठाका त्याग करके तुम वनमें भेजे हुए रामका (कर्तव्य समझकर) अनुसरण

कर रही हो, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अपने स्वामी नगरमें रहें या वनमें, भले हों या बुरे—जिन स्त्रियोंको वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। पति बुरे स्वभावका, मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाववाली नारियोंके लिये श्रेष्ठ देवताके समान है। वैदेही! मैं बहुत विचार करनेपर भी पतिसे बढ़कर कोई हितकारी बन्धु नहीं देखती। तपस्याके अविनाशी फलकी भाँति वह इस लोक और परलोकमें सर्वत्र सुख पहुँचानेमें समर्थ होता है।'

त्वद्विधास्तु गुणैर्युक्ता दृष्टलोकपरावराः।
स्त्रियः स्वर्गे चरिष्यन्ति यथा पुण्यकृतस्तथा॥
(वा० रा० अयोध्या० ११७। २६)

'जो तुम्हारे समान लोक-परलोकको जाननेवाली उत्तम गुणोंसे युक्त साध्वी स्त्रियाँ हैं, वे उसी प्रकार स्वर्गमें विचरण करेंगी, जिस प्रकार कि पुण्यकर्मा मनुष्य।'

तदेवमेतं त्वमनुव्रता सती
पतिप्रधाना समयानुवर्तिनी।
भव स्वभर्तुः सहधर्मचारिणी
यशश्च धर्मं च ततः समाप्स्यसि॥
(वा० रा० अयोध्या० ११७। २७)

'अतः तुम इसी प्रकार अपने पतिदेव श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें लगी रहो। सतीधर्मका पालन करो। पतिको प्रधान देवता समझो और प्रत्येक समय उनका अनुसरण करती हुई उनकी सहधर्मिणी बनो। इससे तुम्हें धर्म और सुयश दोनोंकी प्राप्ति होगी।'

श्रीअनसूयाजीके द्वारा पातिव्रत्यकी महिमा सुनकर सीताजीने कहा—

आगच्छन्त्याश्च विजनं वनमेवं भयावहम्।
समाहितं हि मे श्वश्र्वा हृदये तत् स्थिरं मम॥
(वा० रा० अयोध्या० ११८।७)

'जब मैं पतिके साथ इस प्रकारके भयंकर निर्जन वनमें आने लगी, उस समय मेरी सास कौसल्याने मुझे जो कर्तव्यका उपदेश दिया था, वह मेरे हृदयमें ज्यों-का-त्यों अङ्कित है।'

पाणिप्रदानकाले च यत् पुरा त्वग्निसन्निधौ।
अनुशिष्टा जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम्॥
(वा० रा० अयोध्या० ११८।८)

'पहले मेरे विवाहकालमें अग्निके समीप माताने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह भी याद है।'

न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि।
पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद् विधीयते॥
(वा० रा० अयोध्या० ११८।९)

'हे धर्मचारिणि! इसके सिवा मेरे अन्य स्वजनोंने अपने वचनोंद्वारा जो-जो उपदेश दिया है, वह भी मुझे भूला नहीं है। स्त्रीके लिये पतिकी सेवाके अतिरिक्त दूसरा कोई तप नहीं है।'

सावित्री पतिशुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते।
तथावृत्तिश्च याता त्वं पतिशुश्रूषया दिवम्॥
(वा० रा० अयोध्या० ११८।१०)

'सत्यवान्‌की पत्नी सावित्री पतिकी सेवा करके ही स्वर्गलोकमें पूजित हो रही है। आप भी पति-सेवाके द्वारा ही उस पातिव्रत्यका आचरण करके इस प्रकारकी अलौकिकताको प्राप्त हुई हैं।'

वरिष्ठा सर्वनारीणामेषा च दिवि देवता।
रोहिणी न विना चन्द्रं मुहूर्तमपि दृश्यते॥

(वा० रा० अयोध्या० ११८। ११)

'सम्पूर्ण स्त्रियोंमें श्रेष्ठ यह स्वर्गकी देवी रोहिणी पतिसेवाके प्रभावसे ही एक मुहूर्तके लिये भी चन्द्रमासे विलग होती नहीं देखी जाती।'

एवंविधाश्च प्रवराः स्त्रियो भर्तृदृढव्रताः।
देवलोके महीयन्ते पुण्येन स्वेन कर्मणा॥

(वा० रा० अयोध्या० ११८। १२)

'इस प्रकार दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्यधर्मका पालन करनेवाली बहुत-सी साध्वी स्त्रियाँ अपने पुण्यकर्मके बलसे देवलोकमें आदर पा रही हैं।'

सती अनसूयाजी बहुत उच्च कोटिकी पतिव्रता थीं। उनके पातिव्रत्यके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु और महेशने उनके यहाँ अवतार लिया था। दत्तात्रेयके रूपमें श्रीविष्णु, चन्द्रमाके रूपमें ब्रह्मा और दुर्वासाके रूपमें शंकरने अवतार लिया एवं मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी अर्धाङ्गिनी जगज्जननी सीता एक ऐसी पतिव्रता थीं कि जिनके नामोच्चारणसे ही स्त्री पतिव्रता बन जाती है। सीताके चरित्रसे स्त्रियोंको शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।*

---

* इसके लिये गीताप्रेससे प्रकाशित 'श्रीसीताके चरित्रसे आदर्श शिक्षा' नामकी पुस्तिका पढ़नी चाहिये। मूल्य ८ नया पैसा है।

इसी प्रकार सती पार्वतीका चरित्र संसारमें प्रसिद्ध ही है। पातिव्रत्य-धर्मकी सिद्धिके लिये कन्याएँ तथा स्त्रियाँ चैत्रमासमें इन्हीं श्रीगौरीजीकी पूजा किया करती हैं। इनका चरित्र रामायण, इतिहास और पुराणोंमें भरा हुआ है। जन्मसे ही उनकी अपने स्वामी श्रीशंकरजीमें जो अटल निष्ठा है, वह पतिव्रताओंके लिये परम आदर्श है।

श्रीमद्भागवतमें नारदमुनिने भी युधिष्ठिर महाराजसे पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म इस प्रकार बताये हैं—

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता।
तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम्॥

(७। ११। २५)

'पतिकी सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पतिके भाई-बन्धुओंको प्रसन्न रखना और सर्वदा पतिके नियमोंकी रक्षा करना—ये पतिको ही ईश्वर माननेवाली पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म हैं।'

सम्मार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः।
स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा॥

(७। ११। २६)

'साध्वी स्त्रीको चाहिये कि झाड़ने-बुहारने, लीपने तथा चौक पूरने आदिसे घरको और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे अपने शरीरको अलंकृत रक्खे तथा सब सामग्रियोंको साफ-सुथरी रक्खे।'

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ११। २७)

'अपने पतिदेवकी छोटी-बड़ी इच्छाओंको समयके अनुसार पूर्ण करे। विनय, इन्द्रियसंयम, सत्य एवं प्रिय वचनोंसे प्रेमपूर्वक पति-देवकी सेवा करे।'

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा।
हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते॥
(श्रीमद्भा० ७। ११। २९)

'जो लक्ष्मीजीके समान पतिपरायणा होकर अपने पतिकी उसे साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप समझकर सेवा करती है, उसके पतिदेव वैकुण्ठलोकमें भगवत्सारूप्यको प्राप्त होते हैं और वह लक्ष्मीजीके समान उनके साथ आनन्दित होती है।'

द्रौपदी-सत्यभामा-संवाद

इस विषयमें द्रौपदीका उदाहरण इस प्रकार मिलता है कि उसने पतिसेवाके प्रभावसे लक्ष्मीका स्थान प्राप्त किया था और अर्जुन भी भगवान्‌के परम धाममें गये थे। यह बात महाभारतके स्वर्गा-रोहणपर्वमें आती है। द्रौपदी उच्चकोटिकी पतिव्रता थी। उसकी पतिसेवाका विवरण संक्षेपसे यहाँ दिया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण-की महारानी सत्यभामाने भी उससे शिक्षा ग्रहण की है।

एक समयकी बात है। जब पाण्डव वनमें वास करते थे, उस समय श्रीकृष्णजी पाण्डवोंसे मिलनेके लिये गये। सत्यभामा भी साथ थीं। सत्यभामा द्रौपदीसे मिलनेके लिये गयीं और बोलीं—'पाण्डव लोग सर्वदा तुम्हारे वशमें रहते हैं—इसका रहस्य मुझे बताओ। पाञ्चाली! तुम मुझे भी कोई ऐसा व्रत, तप, स्नान, मन्त्र, ओषधि, विद्या तथा जप, होम या जड़ी-बूटी बताओ, जिससे सर्वदा ही श्यामसुन्दर मेरे अधीन रहें।'

तब पतिपरायणा द्रौपदीने उनसे कहा—'सत्ये ! तुम तो मुझसे दुराचारिणी स्त्रियोंके-से आचरणकी बात पूछ रही हो। भला, उन दूषित आचरणवाली स्त्रियोंके मार्गकी बातें मैं कैसे कहूँ? उनके विषयमें तो तुम्हारा प्रश्न या शङ्का करना भी उचित नहीं है; क्योंकि तुम बुद्धिमती और श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी हो। जब पतिको यह माल्म हो जाता है कि गृहदेवी उसे काबूमें करनेके लिये किसी मन्त्र-तन्त्रका प्रयोग कर रही है, तब वह उससे उसी प्रकार दूर रहने लगता है, जैसे मनुष्य घरमें घुसे हुए साँपसे। इससे कई प्रकारके अनर्थ हो जाते हैं। धूर्तलोग जन्तर-मन्तरके बहाने ऐसी चीजें दे देते हैं, जिनसे भयंकर रोग पैदा हो जाते हैं तथा पतिके शत्रु इसी मिससे विषतक दे डालते हैं। वे ऐसे चूर्ण होते हैं कि जिन्हें यदि पति जिह्वा या त्वचासे भी स्पर्श कर ले तो वे निःसंदेह उसी क्षण उसको मार डालें। ऐसी स्त्रियाँ अपने पतियोंको तरह-तरहके रोगोंका शिकार बना देती हैं। वे उनकी कुमतिसे जलोदर, कोढ़, बुढ़ापा, नपुंसकता, जडता और बधिरता आदिके पंजोंमें पड़ जाते हैं। इस प्रकार धूर्त-पापियोंकी बातें माननेवाली वे पापिनी नारियाँ अपने पतियोंको तंग कर डालती हैं, किंतु स्त्रीको तो कभी किसी प्रकार अपने पतिका अप्रिय नहीं करना चाहिये।

'यशस्विनी सत्यभामे ! महात्मा पाण्डवोंके प्रति मैं जिस प्रकारका आचरण करती हूँ, वह सब सच-सच सुनाती हूँ, तुम सुनो। मैं अहंकार और काम-क्रोधको छोड़कर बड़ी सावधानीसे सब पाण्डवोंकी उनकी अन्यान्य स्त्रियोंके सहित सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्यासे दूर रहती हूँ और मनको काबूमें रखकर केवल सेवाकी इच्छासे ही अपने
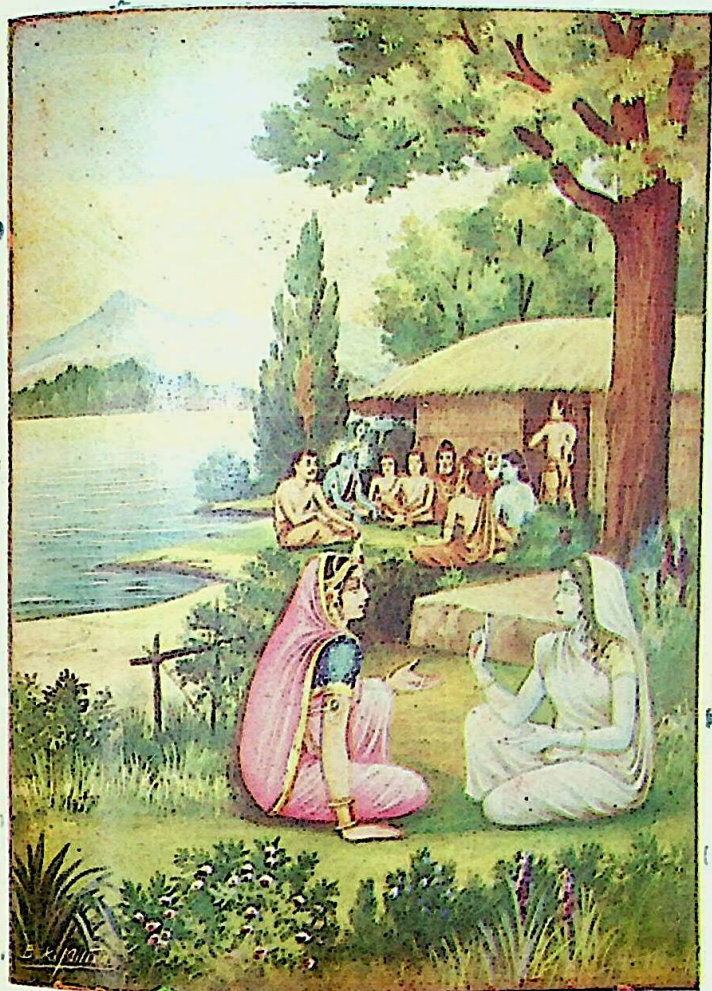
सत्यभामाको द्रौपदी पातिव्रतधर्म बता रही हैं

पतियोंका मन रखती हूँ। यह सब करते हुए भी मैं अभिमानको अपने पास नहीं फटकने देती। मैं कटुभाषणसे दूर रहती हूँ। असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, खोटी बातोंपर दृष्टि नहीं डालती, दूषित आचरणके पास नहीं फटकती तथा पाण्डवोंके अभिप्रायपूर्ण संकेतका अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, सजधज-वाला, धनी अथवा रूपवान्—कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पाण्डवोंके सिवा और कहीं नहीं जाता। अपने पतियोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती। जब-जब मेरे पति घरमें आते हैं, तभी मैं खड़ी होकर आसन और जल देकर उनका सत्कार करती हूँ। मैं घरके बर्तनोंको माँज-धोकर साफ रखती हूँ, मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ। घरमें गुप्त रूपसे अनाजका संचय रखती हूँ और घरको झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीतमें किसीका तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियोंको पास नहीं फटकने देती और सदा ही पतियोंके अनुकूल रहकर आलस्यसे दूर रहती हूँ। सदा ही सत्य भाषण और पतिसेवामें तत्पर रहती हूँ। पतिदेवके बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। जब किसी कौटुम्बिक कार्यसे पतिदेव बाहर जाते हैं, तब मैं पुष्प और चन्दनादिको छोड़कर नियम और व्रतोंका पालन करते हुए रहती हूँ। मेरे पति जिस चीजको नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, उससे मैं भी दूर रहती हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने जो-जो बातें बतायी हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। पति जब घरमें रहते हैं, तब शरीरको यथाप्राप्त वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित रखती

हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेवका प्रिय करनेमें तत्पर रहती हूँ।

'सासजीने मुझे कुटुम्बसम्बन्धी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्यौहारोंपर पक्वान्न बनाना, माननीयोंका सत्कार करना तथा और भी जो-जो धर्म मेरे लिये विहित हैं, उन सभीका मैं सावधानीसे रात-दिन आचरण करती हूँ। मैं विनय और नियमोंको सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ। मेरे पति मृदुलचित्त, सरलस्वभाव, सत्यनिष्ठ और सत्य धर्मका ही पालन करनेवाले हैं, मेरे विचारसे तो स्त्रियोंका पतिके अधीन रहना ही सनातनधर्म है, वही उनका इष्टदेव है और वही आश्रय है। मैं अपने पतियोंसे ऊँची होकर कभी नहीं रहती। उनसे अच्छा भोजन नहीं करती और न कभी सासजीसे ही वाद-विवाद करती हूँ तथा सदा ही संयमका पालन करती हूँ। बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगी रहती हूँ। इसीसे पति मेरे अनुकूल रहते हैं। वीरमाता, सत्यवादिनी कुन्तीकी मैं भोजन, वस्त्र और जल आदिसे सदा ही सेवा करती रहती हूँ। भोजनादिमें मैं कभी भी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती। जिस समय इन्द्रप्रस्थमें रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी-पालन करते थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरके महलमें नित्यप्रति आठ हजार ब्राह्मण सुवर्णके पात्रोंमें भोजन किया करते थे। महाराज युधिष्ठिर अट्ठासी हजार गृहस्थ स्नातकोंका भरण-पोषण करते थे और उनके दस हजार दासियाँ थीं। पर मुझे उनके नाम, रूप, भोजन, वस्त्र—सभी बातोंका पता रहता था और इस बातकी भी मैं निगाह रखती थी कि किसने

क्या काम कर लिया है और क्या नहीं किया । मतिमान् कुन्ती-नन्दनकी दस हजार दासियाँ हाथोंमें थाल लिये दिन-रात अतिथियोंको भोजन कराती थीं । उस समय महाराज युधिष्ठिरके साथ एक लाख घोड़े और एक लाख हाथी चलते थे । उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही करती थी और मैं ही उनकी आवश्यकताएँ सुनती थी । अन्तःपुरके ग्वालों और गड़रियोंसे लेकर सभी सेवकोंके काम-काजकी देख-रेख मैं ही किया करती थी ।

'यशस्विनी सत्यभामे ! महाराजकी जो कुछ आमदनी, व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी । पाण्डवलोग कुटुम्बका सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा-पाठमें लगे रहते थे और आये-गयोंका स्वागत-सत्कार करते थे तथा मैं सब प्रकारके सुख छोड़कर उसकी सँभाल रखती थी । मेरे धर्मात्मा पतियोंका वरुणके भण्डारके समान जो (गुप्त) अटूट खजाना था, उसका पता भी एक मुझको ही था । मैं भूख-प्यासको सहकर रात-दिन पाण्डवोंकी सेवामें लगी रहती । मैं सदा ही सबसे पहले उठती थी और सबसे पीछे सोती थी ।'

द्रौपदीकी ये धर्मयुक्त बातें सुनकर सत्यभामाने उसका आदर करते हुए कहा—'पाञ्चाली ! मेरी एक प्रार्थना है, तुम मेरे कहे-सुनेको क्षमा करना । सखियोंमें तो जान-बूझकर भी ऐसी हँसीकी बातें कह दी जाती हैं ।'

द्रौपदी बोली—'सत्ये ! मैं पतिके चित्तको अपने अनुकूल करनेका यह निर्दोष मार्ग बताती हूँ । यदि तुम इसपर चलोगी तो अपने स्वामीके मनको अपनी ओर खींच लोगी ।'

नैतादृशं दैवतमस्ति सत्ये
सर्वेषु लोकेषु सदेवकेषु।
यथा पतिस्तस्य तु सर्वकामा
लभ्याः प्रसादात्कुपितश्च हन्यात्॥
(महा० वन० २३४।२)

'सत्ये! स्त्रीके लिये इस लोक या परलोकमें पतिके समान कोई दूसरा देवता नहीं है। उसकी प्रसन्नता होनेपर वह सब प्रकारके सुख पा सकती है और असंतुष्ट होनेपर अपने सब सुखोंको मिट्टीमें मिला देती है।'

'हे साध्वी! सांसारिक भोगरूप सुखके द्वारा सुख कभी नहीं मिल सकता, सुखप्राप्तिका साधन तो (न्याययुक्त) दुःखको सहन करना है। अतः तुम सुहृदता, प्रेम, परिचर्या, कार्यकुशलता और तरह-तरहके पुष्प और चन्दनादिसे श्रीकृष्णकी सेवा करो तथा जिस प्रकार वे यह समझें कि मैं इसे प्यारा हूँ, तुम वैसा ही कार्य करो। जब तुम्हारे कानमें पतिदेवके द्वारपर आनेकी आवाज पड़े, तब तुम आँगनमें खड़ी होकर उनके स्वागतके लिये तैयार रहो और जब वे भीतर आ जायँ, तुरंत ही आसन और पैर धोनेके लिये जल देकर उनका सत्कार करो।'

सम्प्रेषितायामथ चैव दास्या-
मुत्थाय सर्वं स्वयमेव कार्यम्।
जानातु कृष्णस्तव भावमेतं
सर्वात्मना मां भजतीति सत्ये॥
(महा० वन० २३४।७)

'हे सत्यभामा ! यदि तुम्हारे पति किसी कामके लिये दासीको आज्ञा दें तो भी तुम दासीको काम करनेसे रोककर उस सब कामको आप ही करो, श्रीकृष्णको यह मालूम होना चाहिये कि सत्यभामा सब प्रकारसे मुझे ही चाहती है ।'

'तुम्हारे पति यदि तुमसे कोई ऐसी बात कहें कि जिसे गुप्त रखना आवश्यक न हो तो भी तुम उसे किसीसे मत कहो । पति-देवके जो प्रिय, स्नेही और हितैषी हों, उन्हें तरह-तरहके भोजन कराओ तथा जो उनके शत्रु, उपेक्षणीय और अशुभचिन्तक हों, अथवा उनके प्रति कपटभाव रखते हों, उनसे सर्वदा दूर रहो । प्रद्युम्न और साम्ब यद्यपि तुम्हारे पुत्र ही हैं तो भी एकान्तमें तो उनके पास भी मत बैठो ।'

महाकुलीनाभिरपापिकाभिः
स्त्रीभिः सतीभिस्तव सख्यमस्तु ।
चण्डाश्च शौण्डाश्च महाशनाश्च
चौराश्च दुष्टाश्चपलाश्च वर्ज्याः ॥

(महा० वन० २३४ । ११)

'जो अत्यन्त कुलीन, दोषरहित और सती हों, उन्हीं स्त्रियोंसे तुम्हारा प्रेम होना चाहिये । क्रूर, लड़ाकी, पेटू, चोरीकी आदतवाली, दुष्ट और चञ्चल स्वभावकी स्त्रियोंसे सदा दूर रहो ।'

'इस प्रकार तुम सब तरह अपने पतिदेवकी सेवा करो । इससे तुम्हारे यश और सौभाग्यकी वृद्धि होगी ।'

सत्यभामा और द्रौपदीका यह संवाद महाभारत वनपर्वके २३३ और २३४वें अध्यायमें विस्तारसे वर्णित है। यहाँ संक्षेपमें दिया गया है, विस्तार देखना चाहें तो उक्त ग्रन्थमें देखें।

अतः पतिव्रता स्त्रीको उचित है कि वह अपने पतिके इच्छानुसार सब प्रकारसे अपना शृङ्गार करके अपनी सेवाद्वारा पतिको संतोष करावे। उसे पतिके सुखके लिये अपने शरीरमें हल्दी और कुङ्कुमका मालिश करना, केश सँवारना, सिन्दूर लगाना, आँखोंमें अञ्जन लगाना, मुखमें पान चबाना तथा हाथ, कान, गले और मस्तक आदिमें यथायोग्य भूषण धारण करना चाहिये। पतिव्रता स्त्री सदा प्रिय, मधुर, विनय और प्रेमयुक्त वचन बोले एवं जिस-जिस काममें पतिकी रुचि मालूम दे, वही काम पतिकी रुचि, आज्ञा और संकेतके अनुसार बड़े विनय, प्रेम और उत्साहके साथ करे। जो काम अपने मनके अनुकूल हो, पर पतिके मनके प्रतिकूल हो तो वह कभी न करे और जो पतिके मनके अनुकूल हो, उसे अपने मनके प्रतिकूल होनेपर भी उत्साहके साथ करे। पतिकी प्रसन्नतामें प्रसन्न रहे और पतिके उदासीन होनेसे उदासीन हो जाय। सम्पत्ति और विपत्तिमें, सुख और दुःखमें सदा-सर्वदा पतिके मनसे मन मिलाकर रहे। मनुस्मृतिमें बतलाया है—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया॥
(५। २५०)

'स्त्रीको सदा प्रसन्नचित्त, घरके कामोंमें कुशल, घरकी सामग्रीको भलीभाँति स्वच्छ रखनेवाली और खर्चमें हाथ रोककर उठानेवाली होना चाहिये।'

यस्मै दद्यात् पिता त्वेनां भ्राता वानुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लङ्घयेत्॥
(५। १५१)

'पिता अथवा पिताकी अनुमतिसे भाई इस स्त्रीको जिसे ब्याह दे, उसी पतिकी जीवनभर सेवा-शुश्रूषा करे तथा उसकी मृत्यु होनेपर भी उसकी आज्ञा और संकेतका उल्लङ्घन न करे।'

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः॥
(५। १५४)

'शीलहीन, स्वेच्छाचारी अथवा गुणोंसे शून्य होनेपर भी पति साध्वी स्त्रीके लिये सदा देवताकी भाँति पूजनीय है।'

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
(५। १५५)

'स्त्रियोंके लिये पति-सेवासे अलग कोई यज्ञ, व्रत और उपवास करनेका विधान नहीं है, जिस पातिव्रत्यका आश्रय लेकर वह पतिकी शुश्रूषा करती है, उसीसे वह स्वर्गलोकमें पूज्य होती है।'

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत् किञ्चिदप्रियम्॥
(५। १५६)

'परम कल्याणमय पतिलोककी इच्छा रखनेवाली नारी पाणिग्रहण करनेवाले पतिके जीवित रहने अथवा मरनेपर भी कभी कोई ऐसा आचरण न करे, जो उसे प्रिय न हो।'

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणके गणेशखण्डमें भी पतिव्रताका लक्षण बताते हुए कहा है—

कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्।
कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम्॥
(४४ । १३)

'कुलीन पतिव्रता नारी अपना पति यदि पापी, पतित, पागल, दरिद्री, रोगी या मूर्ख हो तो भी उसे सदा विष्णुके समान देखती है।'

दक्षस्मृतिमें भी कहा है—

अनुकूला त्ववाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता।
एभिरेव गुणैर्युक्ता स्त्री श्रीरेव न संशयः॥
(४ । १२)

'जो पतिव्रता, साध्वी, कठोर वचन न बोलनेवाली, पतिके अनुकूल और चतुर है, वह उक्त गुणोंसे युक्त स्त्री निःसंदेह लक्ष्मी ही है।'

प्रहृष्टमनसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा।
भर्तुः प्रीतिकरी या तु भार्या सा त्वितरा जरा॥
(४ । १३)

'जो पतिकी अवस्था और मानका विचार करनेमें चतुर तथा नित्य प्रसन्नचित्त और पतिका प्रिय आचरण करनेवाली है, वही भार्या कहने योग्य है; जो ऐसी नहीं है, वह तो जरा नामकी राक्षसीके समान है।'

ऐसी पतिव्रता नारीकी महिमामें मनुजी कहते हैं—

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
सा भर्तृलोकमाप्नोति सद्भिः साध्वीति चोच्यते॥
(५ । १६५)

'जो मन, वाणी और शरीरको संयममें रखकर कभी पतिके विपरीत आचरण नहीं करती, वह (भगवत्स्वरूप) पतिलोकको प्राप्त होती है और वह सत्पुरुषोंद्वारा 'साध्वी' ऐसे कही जाती है ।'

अनेन नारीवृत्तेन मनोवाग्देहसंयता ।
इहाग्र्यां कीर्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥

(५ । १६६)

'मन, वाणी और शरीरको संयममें रखनेवाली नारी इस बर्तावसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति और परलोकमें पतिधामको प्राप्त करती है ।'

इसलिये पति चाहे रोगी हो चाहे नीरोग, चाहे पापी हो चाहे धर्मात्मा, मूर्ख हो चाहे विद्वान्, पतिकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करे, बल्कि सदा उसका प्रिय करे । जो स्त्री सदा पतिके मनके अनुकूल चलती है और पतिके इच्छानुसार उसे ताम्बूल देती है, पंखेसे हवा करती है, पैर दबाती है, प्रेमपूर्ण वचनोंसे तथा आज्ञाके पालनद्वारा पतिको प्रसन्न करती है, वह तीनों लोकोंको जीत लेती है ।

पतिव्रता शाण्डिली

इस विषयमें पतिव्रता शाण्डिली आदर्श है, जिसने अपने कुष्ठरोगसे पीड़ित पतिकी भी ईश्वर मानकर सेवा की—

प्रतिष्ठानपुरमें कौशिक नामक एक ब्राह्मण थे । वे पूर्वजन्ममें किये हुए पापोंके कारण कोढ़के रोगसे पीड़ित रहने लगे । ऐसे घृणित रोगसे युक्त होनेपर भी उनको उनकी पत्नी देवताकी भाँति पूजती थी । वह अपने पतिके पैरोंमें तेल मलती, उनका शरीर दबाती, अपने हाथसे उन्हें नहलाती, कपड़े पहनाती और भोजन

कराती थी एवं उनके थूक, खँखार, मल-मूत्र और रक्त-पीव भी वह स्वयं ही धोकर साफ करती थी। वह उन्हें मीठी वाणीसे प्रसन्न रखती थी। इसी प्रकार अत्यन्त विनीत भावसे वह सदा अपने स्वामीकी सेवा-पूजा किया करती तो भी अधिक क्रोधी स्वभाव होनेके कारण वे अपनी पत्नीको प्राय: फटकारते ही रहते थे। इतनेपर भी वह उनके पैरों पड़ती और उनको देवताके समान समझती थी। यद्यपि उनका शरीर अत्यन्त घृणाके योग्य था तो भी वह साध्वी उन्हें सबसे श्रेष्ठ मानती थी। कौशिक ब्राह्मणसे चला-फिरा नहीं जाता था तो भी एक दिन उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—'धर्मज्ञे! उस दिन मैंने घरपर बैठे हुए सड़कपर जाती हुई वेश्याको देखा था, उसके घर आज मुझे ले चलो। मुझे उससे मिला दो। वही मेरे हृदयमें बसी हुई है।'

अपने कामातुर स्वामीका यह वचन सुनकर वह पतिव्रता उनको कंधेपर चढ़ाकर वेश्याके घरकी ओर चली। जब वह राजमार्गसे जा रही थी, तब रात्रिके घोर अन्धकारमें देख न सकनेके कारण कौशिकने अपने पैरोंसे छूकर मार्गमें स्थित शूलीको हिला दिया। इससे माण्डव्य ऋषिको, जो कि चोर न होते हुए भी चोरके संदेहसे शूलीपर चढ़ा दिये गये थे, बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने कुपित होकर कहा—'जिसने पैरसे शूलीको हिलाकर मुझे महान् कष्ट दिया है, उस पापात्मा नराधमका सूर्योदय होनेपर विनाश हो जायगा।' इस अतिदारुण शापको सुनकर पतिव्रता पत्नी व्यथित होकर बोली—'सूर्यका उदय ही नहीं होगा।' तब सूर्योदय न होनेके कारण बराबर रात ही रहने लगी।
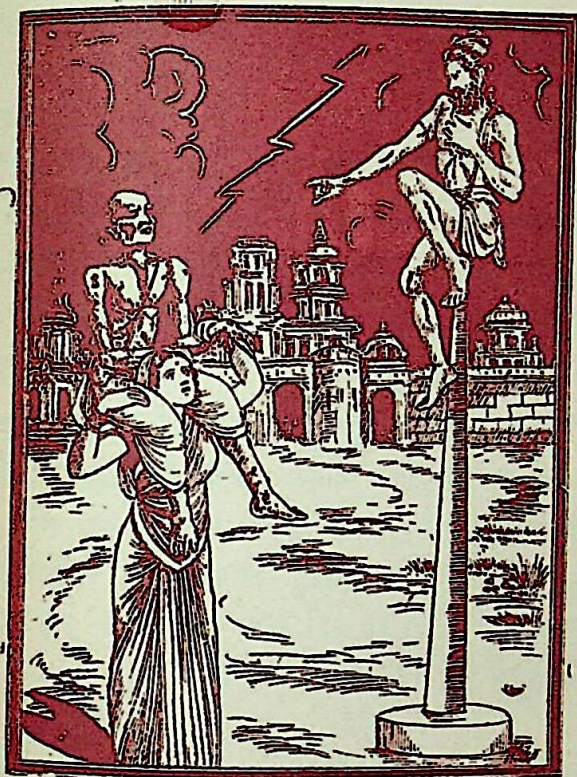
शाण्डिलीके पतिको ऋषिका शाप

इससे देवताओंको बड़ा भय हुआ। वे आपसमें इस प्रकार बात करने लगे—'सूर्योदय न होनेसे स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा (श्राद्ध) और स्वाहा (यज्ञ) से रहित होकर यह सारा जगत् नष्ट हुए बिना कैसे रह सकता है। दिन-रातकी व्यवस्था हुए बिना मास, ऋतु, अयन, वर्ष और समयका ज्ञान होना भी असम्भव है। सूर्योदय न होनेके कारण स्नान-दानादि सब क्रियाएँ बंद हो गयीं, अतः हमलोगोंकी तृप्ति नहीं होती। जब मनुष्य यज्ञका यथोचित भाग देकर हमें तृप्त करते हैं, तब हम खेतीकी उपजके लिये वर्षा करके मनुष्योंपर अनुग्रह करते हैं। इस प्रकार हम जलकी वर्षासे मनुष्योंको और मनुष्य हविष्यसे हमलोगोंको तृप्त करते हैं। जो दुरात्मा लोभवश हमारा यज्ञभाग हमको बिना दिये स्वयं खा लेते हैं, उन अपकारी पापियोंके नाशके लिये हम जल, अग्नि, वायु तथा पृथ्वी आदि-को भी दूषित कर देते हैं। उन दूषित वस्तुओंका उपभोग करनेसे उन कुकर्मियोंकी मृत्युके लिये भयंकर महामारी आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा जो हमें तृप्त करके शेष अन्न अपने उपभोगमें लाते हैं, उन महात्माओंको हम पुण्यलोक प्रदान करते हैं। पर इस समय प्रभातकाल हुए बिना इन मनुष्योंके लिये वह सब पुण्यकर्म असम्भव हो रहा है। अब सूर्योदय कैसे हो ?' इस प्रकार सब देवता आपस-में बात करने लगे।

देवताओंके वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने कहा—'महर्षि अत्रिकी पतिव्रता पत्नी तपस्विनी अनसूयाके पास जाओ और सूर्योदयकी कामनासे उन्हें प्रसन्न करो।' तब देवताओंने जाकर अनसूयाजीको प्रसन्न किया। वे बोलीं—'तुम क्या चाहते हो, बतलाओ।' देवताओंने याचना की कि 'पूर्ववत् दिन होने लगे।' अनसूयाने कहा—

'देवताओ ! पतिव्रताका प्रभाव किसी प्रकार कम नहीं हो सकता, इसलिये मैं उस साध्वीको मनाकर सूर्योदयकी चेष्टा करूँगी ।'

यों कहकर अनसूयादेवी उस ब्राह्मणीके पास गयीं और कुशल-प्रश्नके अनन्तर बोलीं—'कल्याणी ! पतिकी सेवासे ही मुझे महान् फलकी प्राप्ति हुई है तथा सम्पूर्ण कामनाओं एवं फलोंकी प्राप्तिके साथ ही मेरे सारे विघ्न भी दूर हो गये । साध्वी ! मनुष्यको ये पाँच ऋण सदा ही चुकाने चाहिये—अपने वर्णधर्मके अनुसार धनका संग्रह करना, उसके प्राप्त होनेपर शास्त्रविधिके अनुसार उसका सत्पात्रको दान करना, सत्य, सरलता, तपस्या, दान और दयासे युक्त रहना, राग-द्वेषका त्याग करना और शास्त्रोक्त कर्मोंका यथाशक्ति प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना । ऐसा करनेसे मनुष्य उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है । पतिव्रते ! इस प्रकार महान् क्लेश उठाने-पर पुरुषोंको प्राजापत्य आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है । परंतु स्त्रियाँ केवल पतिकी सेवा करनेमात्रसे पुरुषोंके दुःख सहकर उपार्जित किये हुए पुण्यका आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं । स्त्रियोंके लिये पति-सेवाके सिवा यज्ञ, श्राद्ध या उपवासका विधान नहीं है । वे पतिकी सेवामात्रसे ही उन अभीष्ट लोकोंको पा लेती हैं । अतः महाभागे ! तुम्हें सदा पतिकी सेवामें अपना मन लगाना चाहिये; क्योंकि स्त्रीके लिये पति ही परम गति है ।'*

---

* नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ।
भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥
तस्मात् साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति ।
त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्ता परा गतिः ॥
(मार्कण्डेय० १६ । ६१-६२)

अनसूयाजीके वचन सुनकर पतिव्रता ब्राह्मणीने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया और कहा—'स्वभावतः सबका कल्याण करनेवाली देवी! स्वयं आप यहाँ पधारकर पतिकी सेवामें मेरी पुनः श्रद्धा बढ़ा रही हैं। इससे मैं धन्य हो गयी। यह आपका मुझपर बहुत बड़ा अनुग्रह है। इससे देवताओंने भी यहाँ आकर आज मुझपर कृपादृष्टि की है। मैं जानती हूँ कि स्त्रियोंके लिये पतिके समान दूसरी कोई गति नहीं है। यशस्विनि! पतिके प्रसादसे ही नारी इस लोक और परलोकमें भी परम सुख पाती है; क्योंकि पति ही नारीका देवता है। महाभागे! आज आप मेरे यहाँ पधारी हैं। मुझसे अथवा मेरे इन पतिदेवसे आपको जो भी कार्य हो, बतानेकी कृपा करें।'

अनसूयाजी बोलीं—'देवि! तुम्हारे वचनसे दिन-रातकी व्यवस्थाका लोप हो जानेके कारण शुभकर्मोंका अनुष्ठान बंद हो गया है, इसलिये ये इन्द्रादि देवता दुखी होकर मेरे पास आये हैं और प्रार्थना करते हैं कि दिन-रातकी व्यवस्था पहलेकी तरह ही अखण्डरूपसे चलती रहे। मैं इसीके लिये तुम्हारे पास आयी हूँ। मेरी यह बात सुनो। देवि! सूर्यके उदय न होनेसे सम्पूर्ण यज्ञ आदि शुभ कर्मोंका नाश हो जायगा और उनके नाशसे देवताओंकी पुष्टि नहीं होगी, जिससे वृष्टिमें बाधा पड़नेके कारण इस संसारका ही उच्छेद हो जायगा। अतः तुम सम्पूर्ण लोकोंपर दया करो, जिससे पहलेकी तरह सूर्योदय हो।'

ब्राह्मणीने कहा—'महाभागे! माण्डव्य ऋषिने अत्यन्त क्रोधमें भरकर मेरे ईश्वररूप स्वामीको शाप दिया है कि तू सूर्योदय होते ही मर जायगा।' अनसूयाजी बोलीं—'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं

तुम्हारे पतिको पूर्ववत् शरीर एवं नयी स्वस्थ अवस्थावाला कर दूँगी। मुझे पतिव्रता स्त्रियोंके माहात्म्यका सर्वथा आदर करना है, इसीलिये तुम्हें मनाती हूँ।'

ब्राह्मणीके 'तथास्तु' कहकर स्वीकार करनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य हाथमें लेकर सूर्यदेवका आवाहन किया। उस समय दस दिनोंके बराबर रात बीत चुकी थी। तदनन्तर भगवान् सूर्यदेव उदित हो गये। सूर्यदेवके प्रकट होते ही ब्राह्मणीका पति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा, किंतु उसकी पत्नीने गिरते समय उसे पकड़ लिया।

अनसूया बोलीं—'तुम विषाद न करना। पतिकी सेवासे जो तपोबल मुझे प्राप्त हुआ है, उसे तुम अभी देखो। मैंने जो रूप, शील, बुद्धि एवं मधुर भाषण आदि सद्गुणोंमें अपने पतिके समान दूसरे किसी पुरुषको कभी नहीं देखा है तो उस सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगसे मुक्त हो फिरसे तरुण हो जाय और अपनी स्त्रीके साथ सौ वर्षोंतक जीवित रहे।'

अनसूया देवीके इतना कहते ही वह ब्राह्मण अपनी प्रभासे उस भवनको प्रकाशमान करता हुआ रोगमुक्त होकर तरुण शरीरसे जीवित हो उठा, मानो जरावस्थासे रहित देवता हो। तत्पश्चात् देवताओंके दुन्दुभि आदि बाजोंके आवाजके साथ वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंको बड़ा आनन्द मिला। वे अनसूया देवीसे कहने लगे—'आपने देवताओंका बहुत बड़ा कार्य किया है। इससे प्रसन्न होकर देवता आपको वर देना चाहते हैं। आप कोई वर माँगें।' अनसूया बोलीं—'यदि ब्रह्मा आदि देवता मुझपर प्रसन्न होकर वर देना

अनसूयाके पातिव्रत्यसे शाण्डिलीके
पतिका पुनर्जीवन

चाहते हैं तो मेरी यही इच्छा है कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हों तथा अपने स्वामीके साथ मैं उस योगको प्राप्त करूँ, जो समस्त क्लेशोंसे मुक्ति देनेवाला है।'

यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने 'एवमस्तु' कहा और तपस्विनी अनसूयाका सम्मान करके वे सब अपने-अपने धामको चले गये।

तदनन्तर बहुत समय व्यतीत होनेके बाद अनसूयाके तीन पुत्र हुए। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और शंकरके अंशसे दुर्वासा हुए।

पतिव्रता ब्राह्मणीकी यह कथा मार्कण्डेयपुराणमें है। यहाँ इसको संक्षेपसे दिया है। विस्तार देखना चाहें तो उक्त ग्रन्थमें देखना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णका उपदेश

इसलिये स्त्रियोंको पातिव्रतधर्मके पालनपर विशेष ध्यान देना चाहिये। पतिव्रता स्त्रियोंका धर्म क्या है, इस विषयमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भगवान् श्रीकृष्णने श्रीनन्दजीको जो बातें बतलायी हैं, वे बड़े महत्त्वकी हैं। भगवान् कहते हैं—

पतिव्रतानां यो धर्मस्तं निबोध व्रजेश्वर।
नित्यं तु भर्तयौत्सुक्यात् तत्पादोदकमीप्सितम्॥
भक्तिभावेन सततं भोक्तव्यं तदनुज्ञया।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३। १११-११२)

'हे व्रजेश्वर! पतिव्रता स्त्रियोंका जो धर्म है, उसे आप मुझसे सुनिये। उसे चाहिये कि प्रतिदिन पति-सेवामें उत्साह रखकर पति-

देवकी आज्ञासे निरन्तर भक्तिपूर्वक उसके चरणामृतका पान करे, जो कि स्त्रियोंके लिये सदा अभीष्ट है।'

व्रतं तपस्यां देवार्चां परित्यज्य प्रयत्नतः ॥
कुर्याच्चरणसेवां च स्तवनं परितोषणम् ।
तदाज्ञारहितं कर्म न कुर्याद् वैरतः सती ॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३ । ११२-११३)

'व्रत, तपस्या, देवपूजन आदि कार्योंको छोड़कर पहले अपने पतिके चरणोंकी सेवा सावधानीके साथ यत्नपूर्वक करे तथा उनकी स्तुति करके उनको संतुष्ट करे। सती स्त्रीको चाहिये कि मनोमालिन्यके कारण उसकी आज्ञाके विरुद्ध कोई भी कर्म न करे।'

नारायणात् परं कान्तं ध्यायते सततं सती ।
परपुंसां मुखं चैव सुवेषपुरुषं परम् ॥
यात्रामहोत्सवं नृत्यं नर्तनं गायनं व्रज ।
परक्रीडां च सततं न हि पश्यति सुव्रता ॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३ । ११४-११५)

'साध्वी स्त्री भगवान् नारायणसे भी बढ़कर पतिको समझती हुई उसका सदा ध्यान करती है। दूसरे पुरुषोंका मुख नहीं देखती तथा गहनों-कपड़ोंसे सुसज्जित परपुरुषकी ओर तो कभी नहीं देखती। पतिव्रता स्त्री यात्रा और अन्य बड़े-बड़े महोत्सवोंको तथा नाच, गान आदि खेल-तमाशोंको, दूसरोंके हास-विलासको कभी नहीं देखा करती।'

यद् भक्ष्यं स्वामिनो नित्यं तदेवमपि योषिताम् ।
न हि त्यजेत् तु तत्सङ्गं क्षणमेव च सुव्रता ॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३ । ११६)

'जो उसके पतिका भोजन होता है, वही भोजन स्त्रियोंके लिये भी श्रेष्ठ होता है। पतिव्रताको चाहिये कि अपने पतिका सङ्ग एक क्षणके लिये भी परित्याग न करे।'

उत्तरे नोत्तरं दद्यात् स्वामिनश्च पतिव्रता।
न कोपं कुरुते शुद्धा ताडिता चापि कोपिता॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३। ११७)

'और अपने पतिके साथ उत्तर-प्रत्युत्तर न करे। उस शुद्ध स्वभाववाली स्त्रीको चाहिये कि अपने पतिद्वारा ताडना दी जानेपर या पतिके क्रोध करनेपर भी पतिपर क्रोध न करे।'

क्षुधितं भोजयेत् कान्तं दद्यात् पानं च भोजनम्।
न बोधयेत् तं निद्रालुं प्रेरयेन्नैव कर्मसु॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३। ११८)

'अपने प्यारे पतिको जब वह भूखा हो तो उसे भोजन करावे, उसे खाने-पीनेकी वस्तुएँ आदरपूर्वक अर्पण करे। जब वह सोया हुआ हो, उस समय जगावे नहीं तथा कोई कर्म करनेके लिये प्रेरणा भी न करे।'

पुत्राणां च शतगुणं स्नेहं कुर्यात् पतिं सती।
पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्ता दैवतं कुलयोषितः॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३। ११९)

'सती स्त्रीको चाहिये कि पुत्रोंकी अपेक्षा सौगुना प्रेम पतिके साथ करे। कुलवती स्त्रियोंके लिये पति ही मित्र है, पति ही गति है, पति ही देवता है।'

शुभं दृष्ट्वा सुधातुल्यं कान्तं पश्यति सुन्दरी ।
सस्मितं वदनं कृत्वा भक्तिभावेन यत्नतः ॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३ । १२०)

'सुन्दरी स्त्री सावधानीके साथ भक्तिपूर्वक मुसकराती हुई माङ्गलिक वस्तुको अमृतके सदृश देखकर प्रियतम पतिदेवका दर्शन किया करती है ।'

भगवान् श्रीकृष्ण श्रीनन्दरायजीसे स्त्रियोंका आदर्श सदाचार बतलाते हुए कहते हैं—

सा शुद्धा प्रातरुत्थाय नमस्कृत्य पतिं सुरम् ।
प्राङ्गणे मङ्गलं दद्याद् गोमयेन जलेन च ॥
गृहकृत्यं च कृत्वा च स्नात्वाऽऽगत्य गृहं सती ।
सुरं विप्रं पतिं नत्वा पूजयेद् गृहदेवताम् ॥
गृहकृत्यं सुनिर्वर्त्य भोजयित्वा पतिं सती ।
अतिथिं पूजयित्वा च स्वयं भुङ्क्ते सुखं सती ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८४ । १५–१७)

'उस सती स्त्रीको चाहिये कि प्रातःकाल उठकर हाथ-मुँह धोकर पति एवं इष्टदेवको प्रणाम करके अपने आँगनको जलसे धोकर और गोबरसे लीपकर माङ्गलिक वस्तुओंसे सुसज्जित करे । फिर घरका कार्य करके स्नानके अनन्तर घरपर आकर देवता, ब्राह्मण और पतिको नमस्कार करके घरके देवताओंकी पूजा करे । इसके बाद घरके काम भलीभाँति करके पतिको भोजन कराके अतिथि-सेवा करे और उसके बाद स्वयं भी सुखपूर्वक भोजन करे ।'

यमराजका उपदेश

वाराहपुराणमें यमराज नारदमुनिसे पतिव्रताका प्रभाव बतलाते हुए कहते हैं—

एकदृष्टिरेकमना भर्तुर्वचनकारिणी ।
तस्या बिभीमहे सर्वे ये तथान्ये तपोधन ॥
(वाराह० २०९ । ६)

'हे तपोधन नारदजी ! जो पतिव्रता एकमात्र अपने पतिमें ही दृष्टि और मनको लगाये रहती है तथा उसकी आज्ञाका पालन करती है, उससे हम (यमराज) तथा और जो दूसरे देवता हैं, वे सब डरते रहते हैं ।'

देवानामपि सा साध्वी पूज्या परमशोभना ।
भर्त्रा चाभिहिता यापि न प्रत्याख्यायिनी भवेत् ॥
(वाराह० २०९ । ७)

'जो पतिके द्वारा अपमानित की जानेपर भी उनको प्रत्युत्तर नहीं देती, वह परम शोभना पतिव्रता साध्वी स्त्री देवताओंके द्वारा भी पूजा करनेके योग्य है ।'

एवं या तु भवेन्नित्यं भर्तुः प्रियहिते रता ।
अनुवेष्टनभावेन भर्त्तारमनुगच्छति ॥
सा तु मृत्युमुखद्वारं न गच्छेद् ब्रह्मसम्भव ।
(वाराह० २०९ । ९-१०)

'इस प्रकार जो नित्यप्रति पतिके प्रिय कार्य और हितमें लगी रहती है तथा उनकी अनुचरीके भावसे पतिके साथ-साथ चलती है, हे ब्रह्मपुत्र ! वह यमराजके मुखद्वारको नहीं देखती ।'

एष माता पिता बन्धुरेष मे दैवतं परम् ।
एवं शुश्रूषते या तु सा मां विजयते सदा ॥
(वाराह० २०९ । ११)

'जो सती स्त्री ऐसा समझकर कि ये पतिदेव ही मेरे माता, पिता, बन्धु हैं, ये ही मेरे परमदेव हैं, उनकी सेवा करती है, वह सदा मुझ (यमराज) को जीत लेती है ।'

पतिव्रता तु या साध्वी तस्यां चाहं कृताञ्जलिः ।
भर्त्तारमनुध्यायन्ती भर्त्तारमनुगच्छती ॥
भर्त्तारमनुशोचन्ती मृत्युद्वारं न पश्यति ।
(वाराह० २०९ । १२-१३)

'जो साध्वी पतिव्रता स्त्री है, उसके सामने मैं हाथ जोड़े रहता हूँ । जो अपने पतिका ही ध्यान करती है और पतिके ही पीछे चलती है, पतिके हितकी चिन्ता करती रहती है, वह यमराजके द्वारको नहीं देखती ।'

स्नान्ती च तिष्ठती वापि कुर्वन्ती वा प्रसाधनम् ॥
नान्यं या मनसा पश्येन्मृत्युद्वारं न पश्यति ।
(वाराह० २०९ । १४-१५)

'जो स्नान करती हुई, खड़ी हुई या शृङ्गार करती हुई अपने पतिको छोड़कर किसी दूसरेकी ओर मनसे भी नहीं देखती, वह यमराजका द्वार नहीं देखती ।'

चक्षुर्देहश्च भावश्च यस्या नित्यं सुसंवृतम् ॥
शौचाचारसमायुक्ता सापि मृत्युं न पश्यति ।
(वाराह० २०९ । १७-१८)

'जिसके नेत्र, शरीर और भाव सदा ही भलीभाँति ढके हुए रहते हैं, जो शौचाचारसे सम्पन्न रहती है, वह भी यमराजका दर्शन नहीं करती।'

भर्तुर्मुखं प्रपश्येद् या भर्तुश्चित्तानुसारिणी ॥
वर्तते च हिते भर्तुर्मृत्युद्वारं न पश्यति ।
(वाराह० २०९ । १८-१९)

'जो स्त्री पतिका मुख देखती रहती है, जो पतिके मनके अनुकूल चलती है, जो पतिके हितमें वर्तती है, वह यमराजके द्वारको नहीं देखती।'

पतिव्रता सतीकी महिमा

पतिव्रता नारीके पातिव्रत्यके प्रभावसे उसे तथा उसके पतिको भी मृत्युका भय नहीं रहता। उसके तेजसे समस्त देवता भय मानते हैं। पतिव्रताकी शक्ति बड़ी विलक्षण होती है। श्रीकृष्णभगवान् नन्दरायजीसे कहते हैं—

नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसाम् ।
तया सार्धं च निष्कर्मी मोदते हरिमन्दिरे ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १२२)

'पातिव्रत्यके तेजसे विभूषित उन सती स्त्रियोंके लिये कर्मोंका फल भोगना शेष नहीं रहता, बल्कि उनका पति भी कर्मसंस्कारोंसे रहित होकर उसीके साथ भगवान्के परम धाममें सुखपूर्वक निवास करता है।'

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सतीपादेषु तान्यपि ।
तेजश्च सर्वदेवानां मुनीनां च सतीषु च ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १२३)

'पृथ्वीमें जितने भी तीर्थ हैं, वे सब-के-सब सती स्त्रियोंके चरणोंमें विराजमान रहते हैं तथा समस्त देवताओंका और मुनियोंका तेज भी सती स्त्रियोंमें रहता है।'

तपस्विनां तपः सर्वं व्रतीनां यत् फलं व्रज ।
दाने फलं यद् दातृणां तत् सर्वं तासु संततम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १२४)

'हे व्रजेश्वर ! तपस्वियोंका सम्पूर्ण तप, व्रत करनेवालोंका समस्त फल तथा दान देनेका जो फल दान देनेवालोंको मिलता है, वह सब उन पतिव्रताओंको सदा मिलता रहता है।'

स्वयं नारायणः शम्भुर्विधाता जगतामपि ।
सुराः सर्वे च मुनयो भीतास्ताभ्यश्च संततम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १२५)

'स्वयं नारायण, जगत्स्रष्टा ब्रह्मा और शिव तथा समस्त देवता और मुनिजन (पतिव्रताओंका अप्रिय करनेमें) सदा उनसे डरते रहते हैं।'

सतीनां पादरजसा सद्यः पूता वसुन्धरा ।
पतिव्रतां नमस्कृत्वा मुच्यते पातकान्नरः ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १

'सतियोंकी चरणधूलिसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। (पापी) मनुष्य पतिव्रता स्त्रीको प्रणाम करके पापोंसे छूट जाता है।'

सतीनां च पतिः साधुः पुत्रो निश्शङ्क एव च ।
न हि तस्य भयं किञ्चिद् देवेभ्यश्च यमादपि ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १२८)

'सती स्त्रियोंका पति साधु-स्वभाववाला हो जाता है। उसको देवताओंसे या स्वयं यमराजसे भी कुछ भय नहीं रहता।'

इस विषयमें पतिव्रता सावित्रीका आख्यान प्रसिद्ध ही है। अतः उसका अनुशीलन करना चाहिये।

पतिव्रता सावित्री

मद्रदेशमें अश्वपति नामके एक बड़े ही धार्मिक और ब्राह्मणसेवी राजा थे। वे अत्यन्त उदार-हृदय, सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय, दानी, चतुर, पुरवासी और देशवासियोंके प्रिय, समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले और क्षमाशील थे। उनके सावित्री देवीकी उपासना करनेपर सावित्रीकी कृपासे एक कन्या हुई, जिसका नाम ब्राह्मणों और राजाने 'सावित्री' रक्खा। सावित्रीको युवती देखकर उसके गुणोंके अनुरूप कोई वर न मिलनेपर राजा अश्वपतिने एक दिन उससे कहा—'बेटी! तू अपने योग्य वरको स्वयं ही खोज ले; क्योंकि धर्मशास्त्रकी आज्ञा है कि विवाहके योग्य हो जानेपर जो कन्यादान नहीं करता, वह पिता निन्दनीय है; ऋतुकालमें जो स्त्री-समागम नहीं करता, वह पति निन्दाका पात्र है और पतिके मर जानेपर जो उस विधवा माताकी सेवा और पालन नहीं करता, वह पुत्र निन्दनीय है। अतः तू शीघ्र ही वरकी खोज कर ले।' पुत्रीसे यों कहकर उन्होंने अपने बूढ़े मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि 'आपलोग सवारी लेकर सावित्रीके साथ जायँ।'

तपस्विनी सावित्रीने कुछ सकुचाते हुए पिताकी आज्ञा स्वीकार की और उनके चरणोंमें नमस्कार करके सोनेके रथमें चढ़कर

बूढ़े मन्त्रियोंके साथ वरकी खोज करनेके लिये चल दी । वह राजर्षियोंके रमणीय तपोवनोंमें गयी और उन माननीय वृद्ध पुरुषोंके चरणोंकी वन्दना करके फिर क्रमशः सब वनोंमें भी विचरती रही ।

एक दिन मद्रराज अश्वपति अपनी सभामें बैठे हुए देवर्षि नारदसे बातें कर रहे थे । उसी समय मन्त्रियोंके सहित सावित्री समस्त तीर्थोंमें विचरकर अपने पिताके घर पहुँची । उसने पिताजी तथा नारदजीको भी प्रणाम किया । उसे देखकर नारदजीने पूछा—'राजन् ! यह युवती हो गयी है, फिर भी आप इसका विवाह क्यों नहीं करते ?' अश्वपतिने कहा—'इसे मैंने वर खोज लेनेके लिये ही भेजा था और यह आज ही लौटी है । आप इसीसे पूछिये; इसने किसको चुना है ।' फिर पिताके यह कहनेपर कि तू अपना वृत्तान्त सुना, सावित्रीने कहा—'शाल्व देशके राजा द्युमत्सेन राज्य छिन जानेसे वनमें तपस्या कर रहे हैं, उनके कुमार सत्यवान् मेरे अनुरूप हैं और मैंने मनसे उन्हींको अपने पतिरूपसे वरण किया है ।'

राजाने नारदजीसे पूछा—'राजकुमार सत्यवान् तेजस्वी, बुद्धिमान्, क्षमावान् और शूरवीर तो है न ?' नारदजी बोले—'वह द्युमत्सेनका पुत्र सूर्यके समान तेजस्वी, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान्, इन्द्रके समान वीर, पृथ्वीके समान क्षमाशील, रन्तिदेवके समान दाता, उशीनरके पुत्र शिबिके समान (शरणागतरक्षक) ब्रह्मण्य और सत्यवादी, ययातिके समान उदार, चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन और अश्विनीकुमारोंके समान अद्वितीय रूपवान् है । वह जितेन्द्रिय, मृदुलस्वभाव, शूरवीर, मिलनसार, ईर्ष्याहीन, लज्जाशील और तेजस्वी है ।' अश्वपतिने कहा—'आप उसे सभी गुणोंसे सम्पन्न बता रहे हैं;

यदि उसमें कोई दोष हों तो वे भी बताइये ।' नारदजी बोले—'उसमें एक दोष है, जिससे उसके सारे गुण दबे हुए हैं । वह दोष यह है कि आजसे ठीक एक वर्ष बीतनेपर सत्यवान् देह त्याग देगा ।'

तब राजाने सावित्रीसे कहा—'बेटी ! तू पुनः जाकर दूसरे वरकी खोज कर ।' इसपर सावित्री बोली—'पिताजी ! भाई-भाईके हिस्सेका बँटवारा एक बार ही होता है, कन्यादान एक बार ही किया जाता है और 'मैंने दिया' ऐसा संकल्प भी एक बार ही होता है । ये तीन बातें एक-एक बार ही हुआ करती हैं । अब तो जिसे मैंने एक बार वरण कर लिया—वह दीर्घायु हो अथवा अल्पायु तथा गुणवान् हो अथवा गुणहीन—वही मेरा पति होगा, किसी अन्य पुरुषको मैं नहीं वर सकती । पहले मनसे निश्चय करके फिर वाणीसे कहा जाता है और उसके बाद कर्मद्वारा किया जाता है । अतः इसमें मेरे लिये मेरा मन ही प्रमाण है ।'*

नारदजी बोले—'राजन् ! सावित्रीकी बुद्धि निश्चयात्मिका है । इसे किसी भी प्रकार इस धर्मसे विचलित नहीं किया जा सकता । अतः इसका सत्यवान्के साथ ब्याह कर देना ही ठीक जँचता है ।' यह कहकर नारदजी चले गये ।

नारदजीकी आज्ञा मानकर राजा अश्वपति वैवाहिक सामग्री

---

* सकृदंशो निपतति सकृत् कन्या प्रदीयते ।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।
सकृद् वृतो मया भर्ता न द्वितीयं वृणोम्यहम् ॥
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते ।
क्रियते कर्मणा पश्चात् प्रमाणं मे मनस्ततः ॥
(महा० वन० २९४ । २६—२८)

तथा ब्राह्मणोंको साथ लेकर कन्याके सहित राजा द्युमत्सेनके आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने नेत्रहीन राजा द्युमत्सेनको सालवृक्षके नीचे कुशासनपर बैठे देखा और उनकी यथायोग्य पूजा की तथा विनीत शब्दोंमें अपना परिचय दिया। राजा द्युमत्सेनने अर्घ्य और आसनादिसे राजाका सत्कार किया और पूछा—'कहिये, किस निमित्तसे पधारनेकी कृपा की?' तब अश्वपतिने कहा—'राजर्षे! मेरी यह सावित्री नामकी रूपवती कन्या है। इसे आप धर्मानुसार पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार कीजिये।'

द्युमत्सेनने कहा—'हम राज्यसे भ्रष्ट हो चुके हैं और यहाँ वनमें रहकर संयमपूर्वक तपस्वियोंका जीवन व्यतीत करते हैं। आपकी कन्या तो यह सब कष्ट सहन करने योग्य नहीं है।' अश्वपति बोले—'राजन्! सुख-दुःख तो आने-जानेवाले हैं, इस बातको मैं और मेरी पुत्री दोनों जानते हैं। मैं तो सब प्रकार निश्चय करके ही आपके पास आया हूँ।'

तब राजा द्युमत्सेनने उनकी बात स्वीकार कर ली और आश्रमके सब ब्राह्मणोंको बुलाकर दोनों राजाओंने विधिवत् विवाह-संस्कार कराया। राजा अश्वपतिने वर-कन्याको आभूषण आदि भी दिये। फिर राजा अश्वपति बड़े आनन्दसे अपने भवनको लौट आये। उस सर्वगुणसम्पन्ना भार्याको पाकर सत्यवान्‌को बड़ी प्रसन्नता हुई और अपना मनमाना वर पाकर सावित्रीको भी बड़ा आनन्द हुआ।

पिताके चले जानेपर सावित्रीने सब वस्त्राभूषण उतार दिये और वल्कल वस्त्र पहन लिये। उसकी सेवा, गुण, विनय, संयम और सबके मनके अनुसार काम करनेसे सभीको बहुत संतोष हुआ।

उसने सेवा और वस्त्राभूषणोंके द्वारा सासको और देवताके समान सत्कार करते हुए अपनी वाणीका संयम करके ससुरजीको संतुष्ट किया। इसी प्रकार मधुर भाषण, कार्यकुशलता, शान्ति और सेवा करके पतिदेवको प्रसन्न किया। इस प्रकार वह उन सबकी सेवा करने लगी।

जब बहुत दिन बीत गये, तब अन्तमें वह समय भी आ गया, जिस दिन सत्यवान् मरनेवाला था। जब चार दिन शेष रह गये, तब सावित्रीने तीन दिनका व्रत किया और चौथे दिन सूर्योदयके साथ ही सब आह्निक कृत्य समाप्त किया तथा सभी ब्राह्मण, बड़े-बूढ़े सास और ससुरको प्रणाम किया। जब सत्यवान् कंधेपर कुल्हाड़ी रखकर वनसे समिधा लानेके लिये तैयार हुआ, तब सावित्रीने कहा—'आज मैं भी आपके साथ चलूँगी।' सत्यवान् बोला—'प्रिये! तुम उपवासके कारण भूखी हो और वनका रास्ता बड़ा कठिन होता है।' सावित्रीने कहा—'उपवासके कारण मुझे थकान नहीं है, मेरे मनमें उत्साह है।' सत्यवान् बोला—'अच्छा, यदि तुम्हें चलनेका उत्साह है तो चल सकती हो; किंतु माताजी और पिताजीकी आज्ञा ले लो।'

तब सावित्रीने अपने सास-ससुरको प्रणाम करके कहा—'मेरे स्वामी वनमें जा रहे हैं। यदि आपलोग आज्ञा दें तो आज मैं भी इनके साथ जाना चाहती हूँ।' इसपर द्युमत्सेन बोले—'जबसे तू हमारे आश्रममें आयी है, तबसे मुझे तुम्हारे किसी भी बातके लिये याचना करनेका स्मरण नहीं है। अतः बेटी! तू जा सकती है।' इस प्रकार सास-ससुरकी आज्ञा पाकर सावित्री अपने पति सत्यवान्‌के साथ चल दी।

वीर सत्यवान्ने पहले तो अपनी पत्नीके सहित फल बीनकर एक टोकरी भर ली और फिर वह लकड़ियाँ काटने लगा। उस समय श्रमके कारण उसके सिरमें दर्द हो गया। उसने सावित्रीके पास जाकर कहा—'मेरे सिरमें दर्द हो रहा है, सारे शरीरमें दाह-सा होता है; अतः मैं सोना चाहता हूँ।' यह सुनकर सावित्री पतिके पास आयी और उसका सिर गोदीमें रखकर पृथ्वीपर बैठ गयी। इतनेमें ही उसने वहाँ सूर्यके समान तेजस्वी, मुकुटधारी, श्यामशरीर, लाल वस्त्र पहने और हाथमें पाश लिये हुए एक पुरुषको देखा। सावित्री बोली—'आप कौन हैं और क्या करना चाहते हैं ?'

यमराजने कहा—'सावित्री ! मैं यमराज हूँ। तेरे पतिकी आयु समाप्त हो चुकी है, अतः मैं इसे ले जाऊँगा।' सावित्री बोली—'भगवन् ! मनुष्योंको लेनेके लिये तो आपके दूत आया करते हैं। यहाँ स्वयं आप ही कैसे पधारे ?' यमराजने कहा—'सत्यवान् धर्मात्मा और गुणोंका समुद्र है। यह मेरे दूतोंद्वारा ले जाये जाने योग्य नहीं है। इसीसे मैं स्वयं आया हूँ।'

इसके वाद यमराज सत्यवान्के शरीरसे अङ्गुष्ठमात्र परिमाण-वाले सूक्ष्मशरीरधारी जीवात्माको निकालकर दक्षिणकी ओर चल दिये। तब सावित्री भी उनके पीछे-पीछे चली। यह देखकर यमराजने कहा—'सावित्री ! तू लौट जा और इसका और्ध्व-दैहिक संस्कार कर। तू पतिसेवाके ऋणसे मुक्त हो गयी है।' सावित्री बोली—'मेरे पतिदेव जहाँ जायँगे, वहीं मुझे भी जाना चाहिये, यही सनातन धर्म है। तपस्या, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रताचरण और आपकी कृपासे मेरी गति कहीं भी नहीं रुक सकती।'

यमराज और सावित्रीका वार्तालाप

यमराज बोले—'सावित्री ! तेरी युक्तियुक्त बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ । सत्यवान्‌के जीवनके सिवा कोई भी वर माँग ले ।' सावित्रीने कहा—'मेरे ससुर राज्यभ्रष्ट होकर वनमें रहते हैं और उनकी आँखें भी जाती रही हैं । वे आपकी कृपासे नेत्र प्राप्त करें तथा बलवान् और तेजस्वी हो जायँ ।' यमराज बोले—सावित्री ! तूने जो कुछ कहा है, वैसा ही होगा । अब तू लौट जा, जिससे तुझे विशेष श्रम न हो ।' सावित्रीने कहा—'पतिदेवके समीप रहते हुए मुझे श्रम कैसे हो सकता है ? जहाँ मेरे प्राणनाथ रहेंगे, वहीं मैं रहूँगी । इसके सिवा एक बात यह है कि सत्पुरुषोंका तो एक बारका समागम भी अत्यन्त अभीष्ट होता है, उससे भी बढ़कर उनके साथ प्रेम हो जाना है । संत-समागम निष्फल कभी नहीं होता, अतः सर्वदा सत्पुरुषोंके ही साथ रहना चाहिये ।'

यमराज बोले—'सावित्री ! तूने जो हितकी बात कही है, वह मुझे बड़ी अच्छी लगती है । अतः इस सत्यवान्‌के जीवनके सिवा तू दूसरा वर और माँग ले ।' सावित्रीने कहा—'मेरे ससुरजीका राज्य छीन लिया गया है, वह उन्हें स्वयं ही प्राप्त हो जाय और वे अपने धर्मपर डटे रहें ।' यमराज बोले—'ऐसा ही होगा, अब तू लौट जा ।' सावित्रीने कहा—'देव ! इस सारी प्रजाका आप नियमन करते हैं, इसीसे आप यम कहे जाते हैं तथा मन, वचन और कर्मसे समस्त प्राणियोंके प्रति अद्रोह, सबपर कृपा करना और दान देना—यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है ।'

यमराज बोले—'कल्याणी ! तेरी बात मुझे बड़ी प्रिय लगती है । तू सत्यवान्‌के जीवनके सिवा तीसरा अभीष्ट वर और माँग ले ।'

सावित्रीने कहा—'मेरे पिता राजा अश्वपति पुत्रहीन हैं, उनके सौ औरस पुत्र हों।' यमराज बोले—'तेरे पिताके सौ पुत्र होंगे, अब तू लौट जा, बहुत दूर आ चुकी है।' सावित्रीने कहा—"पतिदेवकी संनिधिके कारण मुझे कुछ भी दूरी नहीं जान पड़ती। आप शत्रु-मित्रादिके भेदभावको छोड़कर सबका समानरूपसे न्याय करते हैं, इसीसे सब प्रजा धर्मका आचरण करती है और आप 'धर्मराज' कहलाते हैं। इसके सिवा, सुहृद् होनेके कारण आप-जैसे सत्पुरुषोंके प्रति लोग अपनेसे भी अधिक विश्वास और प्रेम करते हैं।"

यमराज बोले—'सावित्री! तूने जैसी बात कही है, वैसी मैंने तेरे सिवा और किसीके मुँहसे नहीं सुनी। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तू सत्यवान्के जीवनके सिवा कोई भी चौथा वर माँग ले।' सावित्रीने कहा—'सत्यवान्के द्वारा मेरे सौ औरस पुत्र हों।' यमराज बोले—'तेरे भी सौ पुत्र होंगे। राजपुत्री! अब तू लौट जा।' तब सावित्रीने कहा—'सत्पुरुषोंकी वृत्ति निरन्तर धर्ममें ही लगी रहती है, वे कभी दुःखित या व्यथित नहीं होते तथा यह सनातन सदाचार सत्पुरुषोंद्वारा सेवित है—यह जानकर सत्पुरुष परोपकार करते हैं और प्रत्युपकारकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालते।

यमराज बोले—'पतिव्रते! जैसे-जैसे तू मुझे गम्भीर अर्थसे युक्त एवं चित्तको प्रिय लगनेवाली धर्मानुकूल बातें सुनाती जाती है, वैसे-वैसे ही तेरे प्रति मेरी अधिकाधिक श्रद्धा होती जाती है। अब तू मुझसे कोई अनुपम वर माँग ले।' सावित्रीने कहा—'देव! आप-ने मुझे जो पुत्र-प्राप्तिका वर दिया है, वह बिना दाम्पत्यधर्मके पूर्ण नहीं हो सकता। अतः अब यही वर माँगती हूँ कि मेरे पतिदेव

जीवित हो जायँ; क्योंकि पतिके विना मैं जीवित रहना भी नहीं चाहती। आपने ही मुझे सौ पुत्र होनेका वर दिया है और फिर भी आप मेरे पतिदेवको लिये जा रहे हैं। अतः मैं जो यह वर माँग रही हूँ कि सत्यवान् जीवित हो जायँ, इसे देनेसे ही आपका वचन सत्य होगा।'

यह सुनकर सूर्यपुत्र यम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने 'तथास्तु' कहते हुए सत्यवान्का बन्धन खोल दिया और कहा—'यह जीवित होकर सर्वथा नीरोग हो जायगा और तेरे साथ चार सौ वर्षतक जीवित रहेगा।' इस प्रकार सावित्रीको वर देकर धर्मराज अपने लोकको चले गये।

फिर सावित्रीने सत्यवान्के पास आकर उसका सिर अपनी गोदमें रख लिया। थोड़ी ही देरमें सत्यवान् उठ खड़ा हुआ और बोला—'मैं बड़ी देरतक सोया रहा। यह काले रंगका मनुष्य कौन था, जो मुझे लिये जाता था?' सावित्रीने कहा—'वे श्यामवर्णके पुरुष प्रजाका नियमन करनेवाले यमराज थे, अब वे अपने लोकको चले गये हैं। सूर्य अस्त हो चुका है और रात्रि गाढ़ी होती जा रही है। इसलिये ये सब बातें फिर सुनाऊँगी। इस समय तो आश्रमपर चलकर माता-पिताके दर्शन कीजिये।'

सत्यवान्ने उत्तर दिया—'ठीक है, चलो मेरा शरीर अब स्वस्थ है; किंतु मुझे इस समय अपने अन्धे पिताकी और माताकी जितनी चिन्ता हो रही है, उतनी अपने शरीरकी भी नहीं है। मेरे परम पूज्य पवित्रतम माता-पिता मेरे लिये आज कितना संताप सह रहे होंगे। जबतक मेरे माता-पिता जीवित हैं, तभीतक मैं भी जीवन

धारण किये हूँ ।' पतिकी बात सुनकर सावित्री सत्यवान्‌को साथ लेकर आश्रमकी ओर चल पड़ी ।

इसी बीचमें द्युमत्सेनको दृष्टि प्राप्त हो गयी और उन्हें सब वस्तुएँ दिखायी देने लगीं । पुत्रके न आनेसे उन्हें बड़ी चिन्ता हुई और रानी शैब्याके सहित वे उसे सब आश्रमोंमें घूम-घूमकर देखने लगे। तब आश्रमवासी सब ब्राह्मणोंने उन्हें धीरज बँधाया और उन्हें उनके आश्रमपर ले जाकर समझाया । इसके कुछ देर बाद सत्यवान्‌के सहित सावित्री आ गयी । उन्हें देखकर ब्राह्मणोंने कहा—'लो राजन् ! अब तुम्हारा पुत्र आ गया और नेत्र भी प्राप्त हो गये ।' फिर ब्राह्मणोंने सत्यवान्‌से पूछा—'तुमने इतनी रात कैसे कर दी । ऐसी क्या अड़चन आ गयी थी ?'

सत्यवान्‌ने कहा—'मैं पिताजीकी आज्ञा लेकर सावित्रीके सहित वनमें गया था । वहाँ जंगलमें लकड़ी काटते-काटते मेरे सिरमें दर्द हो गया । उस वेदनाके कारण ही मैं बहुत देरतक सोया रहा । इसीसे आनेमें देर हो गयी ।' तब गौतम बोले—'सत्यवान् ! तुम्हारे पिता द्युमत्सेनको आज अकस्मात् दृष्टि प्राप्त हो गयी है । तुम्हें वास्तविक कारणका पता नहीं है, ये सब बातें तो सावित्री बता सकती है ।' फिर उन्होंने सावित्रीसे कहा—'सावित्री ! तुझे हम प्रभावमें साक्षात् सावित्री (ब्रह्माणी) के समान समझते हैं । तुझे भूत, भविष्य-की बातोंका भी ज्ञान है । तू देर होनेका कारण हमें सुना ।'

सावित्री बोली—'श्रीनारदजीने मुझे यह बता दिया था कि अमुक दिन तेरे पतिकी मृत्यु होगी । वह दिन आज आया था,

इसीसे मैं भी इन्हें वनमें अकेले जाते देखकर इनके साथ चली गयी। जब ये सिरदर्दके कारण सोये हुए थे, तब साक्षात् यमराज आये और इन्हें बाँधकर दक्षिण दिशाकी ओर ले चले। मैंने सत्य और प्रिय वचनोंसे उन देवश्रेष्ठकी स्तुति की। इसपर उन्होंने मुझे पाँच वर दिये; ससुरजीको नेत्र और राज्य प्राप्त हों—दो वर तो ये थे; मेरे पिताजीके सौ पुत्र उत्पन्न हों और मेरे भी सौ पुत्र हों—दो ये थे, तथा पाँचवें वरके अनुसार मेरे पतिदेवको जीवन और चार सौ वर्षकी आयु प्राप्त हुई। पतिदेवकी जीवनप्राप्तिके लिये ही मैंने यह व्रत किया था।'

ऋषियोंने कहा—'साध्वी! तू सुशीला, व्रतशीला और पवित्र आचरणवाली है। राजा द्युमत्सेनका दुःखाक्रान्त परिवार आज अन्धकारमय गड्ढेमें डूबा जाता था, तूने उसे बचा लिया।' इसके बाद सब अपने-अपने आश्रमोंमें चले गये।

दूसरे दिन शाल्वदेशके राजकर्मचारियोंने आकर द्युमत्सेनसे कहा—'वहाँ जो राजा था, उसे उसीके मन्त्रीने मार डाला है तथा उसके किसी सहायक और स्वजनको भी जीवित नहीं छोड़ा है। शत्रुकी सारी सेना भाग गयी है और सारी प्रजाने आपके विषयमें एकमत होकर यह निश्चय किया है कि वे ही हमारे राजा होंगे। आपका मङ्गल हो, अब आप प्रस्थान करनेकी कृपा कीजिये। नगरमें आपकी जय घोषित कर दी गयी है।'

फिर राजा द्युमत्सेनको नेत्रयुक्त और स्वस्थ-शरीर देखकर उन सभीके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे और उन्होंने उनको सिर झुकाकर प्रणाम किया। राजाने आश्रममें रहनेवाले वृद्ध ब्राह्मणोंको अभिवादन

किया और उनसे सत्कृत हो वे अपनी राजधानीको चल दिये। वहाँ पहुँचनेपर पुरोहितोंने बड़ी प्रसन्नतासे द्युमत्सेनका राज्याभिषेक किया और उनके पुत्र महात्मा सत्यवान्‌को युवराज बनाया। इसके बहुत समय बाद सावित्रीके सौ पुत्र हुए, जो संग्राममें पीठ न दिखानेवाले और यशकी वृद्धि करनेवाले शूरवीर थे। इसी प्रकार मद्रराज अश्वपतिकी रानी मालवीके गर्भसे भी सावित्रीके वैसे ही सौ भाई हुए। इस प्रकार सावित्रीने अपनेको तथा माता-पिता, सास-ससुर और पतिके कुल—इन सभीको संकटसे उबार लिया।

पतिव्रता सावित्रीकी कथा महाभारतके वनपर्वके २९३ वेंसे २९९वें अध्यायतक विस्तारसे कही गयी है। यहाँ उसे संक्षेपसे लिखा गया है।

इस इतिहाससे सुहागिन माता-बहिनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि पति और सासु-ससुरकी विशेषरूपसे सेवा करें। पति-सेवाकी महिमा बतलाते हुए और्वमुनि अपनी कन्यासे कहते हैं—

स्वकान्तश्च परो बन्धुरिह लोके परत्र च।
न हि कान्तात्परः प्रेयान् कुलस्त्रीणां परो गुरुः॥

(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० २४। ३४)

'कुलीन स्त्रियोंके लिये इस लोकमें और परलोकमें भी अपना पति ही परम बन्धु है; क्योंकि उनके लिये पतिसे बढ़कर न तो कोई प्रियतम है और न कोई परम गुरु ही है।'

देवपूजा व्रतं दानं तपश्चानशनं जपः।
स्नानं च सर्वतीर्थेषु दीक्षा सर्वमखेषु च॥

प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च ब्राह्मणातिथिसेवनम् ।
सर्वाणि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० २४ । ३५-३६)

'देवोंका पूजन, व्रत, दान, तप, उपवास, जप, समस्त तीर्थोंका स्नान तथा समस्त यज्ञोंकी दीक्षा और सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा एवं ब्राह्मण और अतिथियोंकी सेवा—ये सब-के-सब मिलकर भी पतिसेवा-की सोलहवीं कलाकी बराबरी नहीं कर सकते ।'

पतिसेवा परो धर्मः सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ।
स्वप्रज्ञानेन सततं कान्तं नारायणाधिकम् ॥
दृष्ट्वा तच्चरणाम्भोजसेवां नित्यं करिष्यति ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० २४ । ३७-३८)

'स्त्रियोंके लिये समस्त शास्त्रोंमें पतिसेवा ही परमधर्म बतलाया जाता है । जो सती स्त्री होगी, वह अपने पतिको अपने विचारसे नारायणसे भी अधिक समझकर उसके चरण-कमलोंकी सेवा नित्य-निरन्तर किया करेगी ।'

परिहासेन कोपेन भ्रमेणावज्ञया मुने ।
कटूक्तिं स्वामिनः साक्षात् परोक्षान्न करिष्यति ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० २४ । ३९)

श्रीनारायणने नारदजीसे कहा—'मुने ! पतिव्रता स्त्री अपने स्वामीके सामने अथवा परोक्षमें परिहाससे, क्रोधसे, भ्रमसे या अवज्ञा-पूर्वक कभी भी कठोर वचन नहीं कहेगी ।'

जिस स्त्रीका पति विदेशमें हो, उसे श्रृङ्गार, खेल-तमाशा, हँसी-मजाक आदि नहीं करना चाहिये । श्रीयाज्ञवल्क्यजीने भी कहा है—

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषितभर्तृका॥

(१।८४)

'जिसका पति विदेशमें हो, उसे खेल, शरीरका शृङ्गार, सामाजिक उत्सवोंका दर्शन, परिहास और दूसरेके घरमें जाना—इनका त्याग कर देना चाहिये।'

व्यासस्मृतिमें भी बतलाया है—

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता।
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ॥

(२।५२)

'पति परदेशमें हो तो स्त्री शरीरके शृङ्गार आदि संस्कार न करे, मुखको उदास रक्खे, उबटन आदिसे बदनको कान्तियुक्त न बनाये और पतिके प्रति एकनिष्ठा रक्खे तथा निराहार रहकर अपने शरीरको सुखा डाले।'

परदेश जाते समय पतिका कर्तव्य है कि—

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत् कार्यवान्नरः।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत् स्थितिमत्यपि॥

(मनु० ९।७४)

'कर्तव्यपरायण पुरुष पत्नीको पोषणयोग्य वृत्ति देकर विदेश जाय; क्योंकि जीविकाका साधन न रहनेपर मर्यादामें स्थित हुई भी स्त्री (आपत्तिके कारण) दूषित हो सकती है।'

इसलिये पुरुषोंको विदेश जाते समय अपनी स्त्रीके निर्वाहके लिये भोजन-वस्त्र आदिका प्रबन्ध करके ही जाना चाहिये। यदि पति

ऐसा न करके ही चला जाय तो फिर स्त्रीको न्यायोचित शिल्प (कारीगरी) के कार्योंद्वारा अपना जीवन-निर्वाह करना चाहिये । श्रीमनुने भी कहा है—

> विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता ।
> प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥
> (९ । ७५)

'निर्वाहयोग्य वृत्ति देकर जबतक पति विदेशमें रहे, तबतक स्त्री नियमपूर्वक अपना निर्वाह करे और यदि पति जीवन-निर्वाहका प्रबन्ध किये बिना ही परदेश चला जाय तो स्त्री सीना-पिरोना आदि अनिन्दित शिल्प (कारीगरी) के कर्मोंसे अपना निर्वाह करे ।'

विशेष आपत्ति आनेपर स्त्री सेवाका काम करके भी अपना निर्वाह कर सकती है; किंतु अपने धर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये । इस विषयमें दमयन्तीका उपाख्यान आदर्श है । दमयन्तीने वनमें पतिके द्वारा निराधार त्याग दी जानेपर भी अपने धर्मकी रक्षा की, बहुत कष्टपूर्वक अपना जीवन दासीका काम करके बिताया । इसलिये आपत्तिकालमें स्त्रियोंको दमयन्तीकी भाँति अपना जीवन बिताना चाहिये । उसमें पाँच बातें बहुत अलौकिक थीं, जो कि अनुकरणीय हैं । एक तो वह प्रतिज्ञामें बड़ी दृढ़ थी; राजा नलके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा करनेके कारण उसने देवताओंकी भी अवहेलना कर दी । दूसरे, उसने भारी आपत्ति पड़नेपर भी पतिके सङ्गका त्याग नहीं किया । पतिके संकेत करनेपर भी अपने पिता राजा भीमके यहाँ नहीं गयी तथा पतिसङ्गके लिये पिताके राज्य-ऐश्वर्यकी अवहेलना करके वनके घोर क्लेशोंको सहन किया । तीसरे, पतिव्रतधर्ममें उसकी ऐसी अलौकिक निष्ठा थी कि अपनेपर बुरी

दृष्टि डालनेवाले व्याधको पातिव्रत्यके प्रभावसे क्षणमें नष्ट कर दिया। चौथे, उसमें ऐसी महान् तितिक्षा थी कि आपत्तिकालमें भी उसने मौसीके यहाँ अपना परिचय नहीं देकर दासीका काम किया तथा पतिसे विछोह होनेपर भी बिना बुलाये वह माता-पिताके यहाँ भी नहीं गयी, बल्कि भारी कष्टोंका सामना करके रही। पाँचवें, उसका पतिमें ऐसा अलौकिक और अद्भुत प्रेम था कि पतिके विरहमें व्याकुल होकर उसने पतिको खोज लानेके लिये कूटनीतिको भी काममें लिया।

ये तो प्रधान-प्रधान बातें हैं। इनके सिवा उसमें और भी अनेक गुण थे, जिनको उसके चरित्रसे ग्रहण करना चाहिये। महाभारतके वनपर्वमें ५२वेंसे ७८वें अध्यायतक नल-दमयन्तीका उपाख्यान बड़े विस्तारसे कहा गया है। विस्तार देखना चाहें तो वहाँ देख सकते हैं। यहाँ उसका सारमात्र लिखा जा रहा है।

सती दमयन्तीकी कथा

राजा नल निषधदेशके राजा वीरसेनके पुत्र थे। ये बड़े तेजस्वी, ब्राह्मणोंके रक्षक, वेदवेत्ता, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, उदार और प्रजापालक थे। इनमें जुआ खेलनेका एक व्यसन था। इसके अतिरिक्त इनमें अन्य अनेक गुण थे और इनका चरित्र भी बड़ा पवित्र तथा प्रशंसनीय था। इनके पास एक अक्षौहिणी सेना थी और ये स्वयं भी युद्धमें बड़े प्रवीण वीर योद्धा थे।

उन्हीं दिनों विदर्भके राजा भीम हुए। वे भी नलके समान ही गुणी और सदाचारी थे। राजाके कोई संतान न होनेके कारण उन्होंने दमन ऋषिको सेवाद्वारा प्रसन्न किया। दमन ऋषिकी कृपासे उनके तीन पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रोंके नाम थे—दम, दान्त और दमन; और

कन्याका नाम था दमयन्ती। दमयन्ती बहुत ही उत्तम गुणोंसे सम्पन्न और सच्चरित्रवती थी। वह लक्ष्मीके समान सुन्दरी थी।

उन दिनों कितने ही लोग विदर्भदेशसे निषधदेशमें आते और राजा नलके सामने दमयन्तीके रूप और गुणोंका बखान करते। निषधदेशसे विदर्भमें जानेवाले भी दमयन्तीके सामने राजा नलके रूप, गुण और पवित्र चरित्रका वर्णन करते। इससे इन दोनोंके हृदयमें परस्पर अनुरागका बीज अङ्कुरित हो गया।

एक दिन राजा नलने अपने महलके बगीचेमें आये हुए हंसोंमें एक हंसको पकड़ लिया। हंसने कहा—'आप मुझे छोड़ दें तो मैं दमयन्तीके पास जाकर आपके गुणोंका ऐसा वर्णन करूँगा कि वह आपको अवश्य ही वर लेगी।' तब नलने हंसको छोड़ दिया। फिर वे सब हंस विदर्भदेशमें दमयन्तीके पास जाकर बोले—'दमयन्ती! निषधदेशमें नल नामक एक राजा है, वह अश्विनीकुमारके समान सुन्दर है; मनुष्योंमें उसके समान सुन्दर और गुणी कोई नहीं है। यदि तुम उसकी पत्नी हो जाओ तो तुम्हारा जन्म और रूप—दोनों सफल हो जायँ।' दमयन्तीने कहा—'हंस! तुमलोग नलसे भी ऐसी ही बात कहना।' हंसोंने निषधदेशमें लौटकर नलसे दमयन्ती-का संदेश कह दिया।

दमयन्ती हंसोंके मुँहसे राजा नलकी बड़ाई सुनकर उनसे मन-ही-मन प्रेम करने लगी। वह रात-दिन उन्हींका ध्यान करती रहती। इससे उसका शरीर दुबला हो गया और वह दीन-सी दीखने लगी। दमयन्तीके हृदयका भाव सखियोंके द्वारा जानकर राजा भीमने उसके स्वयंवरका विचार किया और सब राजाओंको निमन्त्रणपत्र भेज दिया। तब देश-देशके राजा विदर्भदेशमें आने लगे। राजा भीमने सबके स्वागतकी सुव्यवस्था कर दी।

श्रीनारद तथा पर्वतसे दमयन्तीके स्वयंवरका संवाद सुनकर इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम—ये चारों देवता उससे विवाह करनेके लिये आये। रास्तेमें उनकी राजा नलसे भेंट हुई। उन्होंने राजा नलसे कहा—'तुम दमयन्तीके पास हमारे दूत बनकर जाओ।' नल बोले—'जिस कामके लिये आप आये हैं, उसी कामके लिये मैं जा रहा हूँ; अतः इस कामके लिये मुझे भेजना उचित नहीं है। इसके अतिरिक्त वहाँ द्वारपालोंका बड़ा कड़ा पहरा रहता है, मैं महलमें प्रवेश भी कैसे कर सकता हूँ।' तब देवताओंने कहा--'हम तुम्हें ऐसी शक्ति दे देते हैं, जिससे तुम्हें कोई नहीं रोक सकेगा। तुम जाओ और हमारा संदेश वहाँतक पहुँचाओ।' शीलसम्पन्न राजा नलने देवताओंका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और देवताओंकी दी हुई शक्तिके प्रभावसे वे दमयन्तीके पास निर्बाध पहुँच गये।

दमयन्तीके पूछनेपर राजा नलने अपना परिचय देकर कहा कि 'मैं देवताओंके प्रभावसे विना रोक-टोक तुम्हारे महलमें आ गया हूँ। इस समय मैं देवताओंका दूत बनकर आया हूँ। इन्द्र, यमराज, अग्नि और वरुण—ये चारों लोकपाल तुमसे विवाह करनेके लिये आये हैं। इनमेंसे तुम्हारी इच्छा हो, उसीको वर लो।' दमयन्ती बोली—'जबसे मैंने हंसोंके द्वारा आपकी प्रशंसा सुनी है, तबसे मैं आपको ही पति मानती हूँ, आप मुझे स्वीकार करें।' नलने कहा—'तुम देवताओंको छोड़कर मुझे क्यों चाहती हो? देवताओंमेंसे किसी एकको वर लो।' इसपर वह व्याकुल हो गयी। यह देखकर नलने कहा—'इसके लिये कोई धर्मयुक्त मार्ग होना चाहिये; क्योंकि मैं देवताओंका दूत बनकर आया हूँ। अतः तुम्हारे साथ विवाह करना मेरे लिये न्याय नहीं है।' दमयन्ती बोली—'जब आप सब लोग स्वयंवरमें आयेंगे, उस समय मैं उन सबके सामने

ही आपके गलेमें वरमाला डाल दूँगी, तब आपको कोई दोष नहीं होगा।' राजा नल देवताओंके पास लौट आये और सारी बातें ज्यों-की-त्यों कह सुनायीं और यह बता दिया कि दमयन्ती मुझे ही वरना चाहती है।

तदनन्तर स्वयंवरमें सब राजागण एकत्र हुए। चारों देवता और नल भी आकर यथास्थान बैठ गये। दमयन्ती वरमाला लिये सब ओर घूमने लगी तथा राजाओंका परिचय सुन-सुनकर आगे बढ़ती गयी। जब वह राजा नलके पास पहुँची, तब उसे वहाँ पाँच नल बैठे दिखायी दिये। उसने देवोंसे प्रार्थना की कि 'मैं राजा नलको ही वरण करना चाहती हूँ; अतः आपलोग मुझे राजा नलको बतला दें।' देवतागण उसकी सत्यता, निष्ठा और प्रतिज्ञाको देखकर प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे देवताओंके पहचाननेकी विद्या दी। इससे उसने समझ लिया कि देवताओंके पलक नहीं पड़ती, उनका भूमिसे स्पर्श नहीं होता और उनकी छाया नहीं पड़ती। उसने इन लक्षणोंके द्वारा देवताओंसे पृथक् नलको पहचानकर उनके गलेमें वरमाला डाल दी और घूँघट कर लिया।*

तत्पश्चात् राजा नल और दमयन्तीने देवताओंकी शरण ली। इसपर चारों लोकपालोंने प्रसन्न होकर नलको आठ वर दिये। इन्द्रने कहा—'नल! तुम्हें यज्ञमें मेरा दर्शन होगा और उत्तम गति मिलेगी।' अग्निने कहा—'जहाँ तुम मेरा स्मरण करोगे, वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा और मेरे समान ही देदीप्यमान उत्तम लोक तुम्हें प्राप्त होगा।' यमराजने कहा—'तुम्हारी बनायी हुई रसोई बहुत मीठी होगी और तुम अपने धर्ममें दृढ़ रहोगे।' वरुणने कहा—'जहाँ तुम चाहोगे, वहीं जल प्रकट हो जायगा। तुम्हारी माला उत्तम गन्धसे परिपूर्ण रहेगी।' इस प्रकार दो-दो वर देकर

---

* विलज्जमाना वस्त्रान्ते जग्राहायतलोचना।
(महा० वन० ५८। २७)

सब देवता अपने-अपने लोकको चले। राजा भीमने दमयन्तीका नलके साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया। तब नल दमयन्तीको साथ लेकर अपनी राजधानीमें चले गये।

जब देवतागण स्वर्गको जा रहे थे, उस समय रास्तेमें द्वापर और कलियुग मिले। पूछनेपर उन्होंने कहा—'हमलोग दमयन्तीसे विवाह करने विदर्भदेश जा रहे हैं।' देवता बोले—'स्वयंवर तो हो चुका, दमयन्तीने नलको वरण कर लिया।' तब कलियुगने क्रोध करके कहा—'उसने देवताओंको छोड़कर मनुष्यको अपनाया है, उसे दण्ड देना चाहिये।' इसपर इन्द्रादि देवता बोले—'राजा नल सद्गुणी, सदाचारी, धर्मज्ञ, वेदवेत्ता, सत्यनिष्ठ और दृढ़निश्चयी हैं। उनकी चतुरता, धैर्य, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, दम और शम लोकपालोंके समान है। दमयन्तीने हमारी आज्ञासे ही नलको वरण किया है। अतः उनको शाप नहीं देना चाहिये।' यह कहकर देवता चले गये। कलियुगने द्वापरसे कहा—'मैं नलके शरीरमें प्रवेश करके उसे राज्यच्युत कर दूँगा, जिससे वह दमयन्तीके साथ नहीं रह सकेगा। तुम जूएके पासोंमें प्रवेश करके मेरी सहायता करना।' फिर वे दोनों नलकी राजधानीमें जाकर नलका छिद्रान्वेषण करते रहे, किंतु बारह वर्षतक नलमें कोई दोष नहीं मिला। एक दिन सायंकाल राजा नल लघुशङ्कासे निवृत्त हो बिना पैर धोये ही संध्योपासना करने बैठ गये। इस अपवित्रताके दोषके कारण कलियुगने उनके शरीरमें प्रवेश किया।

एक दिन राजा नलके भाई पुष्करने कलियुगकी प्रेरणासे नलके पास आकर दाव लगाकर जूआ खेलनेका आग्रह किया। बार-बार कहनेपर नलने स्वीकार कर लिया और वे दाव लगाकर जूआ खेलने लगे। द्वापरने पासोंका रूप धारण कर लिया था तथा नलके शरीरमें कलियुग प्रवेश

किये हुए था, अतः वे दाव लगाकर बार-बार हारने लगे। खेलते-खेलते वे सब कुछ हार गये। यह देखकर दमयन्तीने वार्ष्णेय नामक सारथिको बुलाकर कहा—'इन्द्रसेन और इन्द्रसेनीको मेरे नैहर कुण्डिनपुर पहुँचा दो।' सारथि उन दोनों बच्चोंको कुण्डिनपुर पहुँचाकर अयोध्या-नरेश ऋतुपर्णके पास चला गया और वहाँ सारथिका काम करने लगा।

जब राजा नल सब कुछ हार चुके, तब पुष्करने कहा—'अब तुम्हारे पास केवल दमयन्ती रही है। इसे भी दावपर लगा दो।' यह बात सुनकर राजा नलको दुःख तो बहुत हुआ, पर वे चुप रहे। सारे राज-वस्त्र और आभूषणोंको उतारकर तथा एक-एक साधारण वस्त्र पहनकर नल और दमयन्ती वहाँसे चल दिये। पुष्करने सारे नगरमें ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'जो राजा नलके साथ सहानुभूति दिखायेगा, उसे फाँसीकी सजा दी जायगी।' फाँसीके भयसे किसीने भी राजा नलका सत्कार नहीं किया। नल-दमयन्ती तीन दिनतक केवल जल पीकर रहे।

तत्पश्चात् जब वे निषधदेशसे बाहर घोर वनकी ओर चले गये, तब राजा नलने एक चौरास्तेपर दमयन्तीसे कहा—'यह मार्ग अवन्तीपुर जाता है; यह विदर्भ देशको जाता है और यह कोसलदेशका मार्ग है।' इसपर दमयन्ती बोली—'मैं आपको वनमें छोड़कर अकेली कहीं नहीं जाऊँगी।' नलने उत्तर दिया कि 'तुम त्यागनेकी शङ्का क्यों कर रही हो।' उसने कहा—'आपने मुझे विदर्भदेशका रास्ता बतलाया, इससे मैंने यह बात समझी। आपकी यदि इच्छा हो तो आपके साथ मैं पिताके यहाँ जा सकती हूँ। वे आपका सत्कार करेंगे। आप वहाँ सुखसे रहिये।' नल बोले—'तुम्हारे पिता राजा हैं और मैं भी राजा था, किंतु आज इस विपत्तिकालमें मैं तुम्हारे पिताके यहाँ नहीं जाऊँगा।' इसके बाद वे आगे बढ़े और घोर जंगलमें एक धर्मशालामें आकर ठहर गये।

रात्रिमें वे धर्मशालामें जमीनपर ही सो गये। दुःखके कारण राजा नलको नींद नहीं आयी और वे विचारने लगे—दमयन्ती सच्ची पतिव्रता है। मैं इसे छोड़कर चल दूँ तो यह बाध्य होकर अपने पिताके यहाँ चली जायगी। इससे दमयन्तीको एक बार तो दुःख होगा। यह यों तो मुझे छोड़कर नहीं जायगी, पर यह अपने माँ-बापके पास रहकर दुःखके दिन सुविधाके साथ बिता देगी। इसके सतीत्वको तो कोई भङ्ग कर नहीं सकता; क्योंकि यह महान् पतिव्रता सती है। पुनः-पुनः ऐसा विचार कर वे दमयन्तीके दुःखका विचार रहते हुए भी कलियुगके प्रभावके कारण दमयन्तीको वहीं सोती छोड़कर वनमें चले गये।

जब दमयन्तीकी आँखें खुलीं तो वह पतिको न देखकर व्याकुल हो गयी और विलाप करने लगी— 'हा प्राणनाथ! आप कहाँ चले गये? क्या आप मुझसे हँसी करते हैं? क्या आप वास्तवमें चले गये?' इस प्रकार विलाप करती हुई वह वन-वन घूमने लगी। वहाँ उसको एक अजगर पकड़कर निगलने लगा। उस समय भी उसने अपने कष्टका ख्याल न करके पतिके दुःखका ही स्मरण किया। फिर कहा—'नाथ! अजगर मुझे निगल रहा है, आप मुझे इससे क्यों नहीं छुड़ाते?' उसकी दुःखभरी आवाज सुनकर एक व्याध उसके पास आया और उसने तीक्ष्ण शस्त्रसे अजगरको चीर डाला तथा दमयन्तीको उसके मुखसे छुड़ा दिया। फिर उसने दमयन्तीको स्नान कराया। व्याधके पूछे जानेपर दमयन्तीने उसे अपना सारा परिचय दे दिया। व्याधको उसके सौन्दर्यपर मोह हो गया और उसने उसके प्रति अधर्मपूर्ण प्रस्ताव किया। उसकी इस कुत्सित चेष्टाको देखकर सती दमयन्तीको क्रोध आया और उसने शाप दिया कि 'यदि मैंने राजा नलके अतिरिक्त दूसरे पुरुषका मनसे भी कभी

दमयन्तीके दृष्टिपातसे व्याधका विनाश

चिन्तन नहीं किया है तो उस पातिव्रत्यके प्रभावसे यह व्याध मरकर जमीनपर गिर पड़े ।' उसी क्षण वह व्याध मरकर जले हुए ठूँठकी तरह गिर पड़ा ।

दमयन्ती वनमें आगे चली गयी । वहाँ उसने तपस्वियोंका एक आश्रम देखा । तपस्वियोंके पूछनेपर उसने अपने दुःखका सारा वृत्तान्त कह सुनाया और वह पूछने लगी—'क्या मेरे पतिसे मेरा मिलन होगा और मेरे दुःखका कभी अन्त होगा ?' तपस्वियोंने कहा—'तुम्हारा पतिसे शीघ्र ही मिलाप होगा और तुम्हारे सब दुःख दूर हो जायँगे ।' इस प्रकार आश्वासन देकर वे आश्रमसहित अन्तर्धान हो गये ।

दमयन्ती आगे चलकर चेदिदेशके राजा सुबाहुके महलके निकट पहुँच गयी । उस समय उसको पागल समझकर कितने ही बालक उसे घेरे हुए थे । राजमाताने इस दृश्यको देखकर उसे दासीके हाथ महलमें बुलवाया और पूछा—'तुम कौन हो और कैसे घूम रही हो ?' दमयन्ती बोली—'मेरे पतिदेव मुझे वनमें अकेली छोड़कर कहीं चले गये हैं । मैं उनकी खोजमें घूम रही हूँ ।' यों कहते उसकी आँखोंमें आँसू भर आये, फिर उसने कहा—'मैं दासीका काम कर सकती हूँ; किंतु मेरी यह शर्त है कि मैं कभी जूठा नहीं खाऊँगी, किसीके पैर नहीं धोऊँगी और पर-पुरुषके साथ किसी प्रकार भी बातचीत नहीं करूँगी । यदि कोई पुरुष मुझसे दुश्चेष्टा करेगा तो उसे दण्ड देना होगा । मैं अपने पतिको ढूँढ़नेके लिये ब्राह्मणोंसे बातचीत करती रहूँगी ।' राजमाता उसकी शर्त सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और बोली—'ऐसा ही होगा ।' फिर उसने अपनी लड़की सुनन्दाको बुलाकर कहा—'बेटी ! यह तुम्हारी उम्रकी है, इसे तुम अपनी सहेलीकी तरह प्रसन्नतापूर्वक महलमें रक्खो ।'

उधर, राजा नल वनमें घूम रहे थे, तब वनमें लगे हुए दावानलमेंसे एक सर्पकी आवाज सुनकर उस दावानलमें घुस गये। वे उस कर्कोटक नामक सर्पको उठाकर चलने लगे। सर्पने राजासे गिनकर पैर रखनेके लिये कहा; तब राजा नलने गिनती करते हुए 'दश' कहकर ज्यों ही कदम रक्खा, त्यों ही कर्कोटक नागने उनको डस लिया। इससे उनका रूप बदल गया। राजाने कहा—'तुमने यह क्या किया?' सर्प बोला—'तुमने मेरा बड़ा उपकार किया है। अतः तुम्हारे उपकारके लिये मैंने ऐसा किया है। इससे तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा। तुम राजा ऋतुपर्णके यहाँ जाकर नौकरी कर लो। उनको तुम घोड़ोंकी विद्या सिखला देना और उनसे जूएकी कला सीख लेना, जिससे तुम्हें तुम्हारा राज्य वापस मिल जायगा और ये वस्त्र मैं तुम्हें देता हूँ। मेरा स्मरण करके इनको धारण करनेसे तुम्हारा पहलेवाला रूप हो जायगा।' ऐसा कह और वस्त्र देकर कर्कोटक चला गया।

राजा नल अयोध्यापति ऋतुपर्णके पास जाकर बोले—'मेरा नाम बाहुक है। मैं अश्वविद्या या सारथिका काम जानता हूँ, रसोई बनाना जानता हूँ और भी बहुत-से काम जानता हूँ।' राजाने उत्तर दिया कि 'तुम्हारे जिम्मे ये सभी काम रहेंगे, किंतु अश्वशालाके अध्यक्ष रहकर तुम्हें घोड़ोंकी चाल तेज करनेका उद्योग विशेषरूपसे करना होगा। वार्ष्णेय और जीवल तुम्हारे अधिकारमें रहेंगे।' तब राजा नल वहाँ काम करने लगे।

जब दमयन्तीके पिता भीमने यह सुना कि राजा नल राज्यच्युत होकर दमयन्तीके साथ जंगलमें चले गये, तब दुःखित होकर उन्होंने

ब्राह्मणोंको यह आदेश दिया कि जो दमयन्तीका पता लगाकर सूचना देगा, उसे एक हजार गायें और जागीर दी जायगी। नल-दमयन्तीकी खोजमें अनेक ब्राह्मण निकल पड़े। उनमेंसे सुदेव ब्राह्मण ढूँढ़ते-ढूँढ़ते चेदिदेशमें राजा सुबाहुके यहाँ पहुँचे। वहाँ अनुष्ठानमें पुण्याहवाचन हो रहा था। उसमें सुनन्दाके पास बैठी हुई दमयन्तीको ब्राह्मणने पहचान लिया और कहा—'तुम्हारी तथा राजा नलकी खोजमें तुम्हारे पिताने बहुत-से ब्राह्मणोंको नियुक्त किया है। मैं उनमेंसे एक हूँ; तुम्हारे भाईका मित्र हूँ। तुम्हारी खोजमें आया हूँ। तुम्हारे पिता, माता, भाई और तुम्हारे बच्चे भी तुम्हारे वियोगमें दुखी हो रहे हैं अतः तुम्हें वहाँ चलना चाहिये।' यह सुनकर दमयन्ती रो पड़ी और वह वहाँका सब हाल पूछने लगी। दमयन्तीका रोना देखकर सुनन्दाने माँके पास जाकर सब हाल बताया। राजमाताने वहाँ आकर ब्राह्मणसे पूछा—'यह किसकी कन्या और किसकी पत्नी है?' ब्राह्मणने सब परिचय कह सुनाया कि 'यह विदर्भनरेश भीमकी पुत्री और राजा नलकी धर्मपत्नी दमयन्ती है।' यह सुनकर सुनन्दाने दमयन्तीका ललाट धोया, जिससे उसके ललाटका लाल चिह्न दिखायी देने लगा। तब राजमाता उसे पहचानकर रो पड़ी और बोली—'तुम तो मेरी सगी बहिनकी लड़की हो। मैं तुम्हें अबतक पहचान न सकी।' दमयन्तीने कहा—'माताजी! मैं यहाँ बहिन सुनन्दाके साथ बड़े सुखसे रही। अब मेरे माता-पिता तथा बच्चे मेरे बिना दुखी हैं, उनसे मिलनेके लिये मैं आपसे आज्ञा चाहती हूँ।' तब राजमाताने दमयन्तीको पालकीमें बिठलाकर विदा किया और उसकी रक्षाके लिये साथमें बहुत-सी सेना भेज दी। दमयन्ती अपने पिता भीमके पास पहुँची। दमयन्तीको आयी देखकर

उसके माता-पिता, भाई और बच्चे बहुत प्रसन्न हुए तथा सुदेव ब्राह्मण-को एक हजार गायें, गाँव और धन पुरस्कारमें दिये गये।

एक समय दमयन्ती मातासे बोली—'यदि मुझे आप जीवित देखना चाहती हैं तो मेरे पतिदेवको ढुँढ़वानेका उद्योग कीजिये।' दमयन्तीकी माँने अपने स्वामी राजा भीमसे दमयन्तीकी यह बात कह सुनायी। तब राजाने नलको ढूँढ़ लानेके लिये ब्राह्मणोंको नियुक्त कर दिया। जब वे ब्राह्मण दमयन्तीके पास आये तब दमयन्तीने कहा—'आपलोग जिस नगरमें जायँ वहाँ मनुष्योंकी भीड़में यह बात कहें कि तुम मुझ दासीको वनमें अकेली छोड़कर कहाँ चले गये? तुम्हारी यह दासी तुम्हारे वियोगमें दुःखित हुई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।' ब्राह्मणगण दमयन्तीके निर्देशानुसार राजा नलको ढूँढ़ने चल दिये।

एक दिन पर्णाद नामक ब्राह्मणने आकर दमयन्तीसे कहा—'राजा नलका पता लगाते हुए जब मैंने अयोध्याके राजा ऋतुपर्णकी सभामें तुम्हारी बात कही तब उसके बाहुक नामक सारथिने मुझे एकान्तमें बुलाया। वह सारथि राजा ऋतुपर्णके घोड़ोंको शिक्षा देता है, स्वादिष्ट भोजन बनाता है; परंतु उसके हाथ छोटे-छोटे और शरीर साँवला है। उसने मुझसे रोते हुए कहा कि कुलीन स्त्रियाँ घोर कष्ट पानेपर भी अपने शीलकी रक्षा करती हैं और अपने सतीत्वके बलपर स्वर्ग जीत लेती हैं। कभी उनका पति उन्हें त्याग भी दे तो वे क्रोध नहीं करतीं, वे अपने सदाचारकी रक्षा करती हैं। यह ठीक है कि पतिने अपनी पत्नीका योग्य सत्कार नहीं किया; परंतु वह उस समय राज्य-लक्ष्मीसे च्युत, क्षुधातुर, दुखी और दुर्दशाग्रस्त था। ऐसी अवस्थामें उसपर क्रोध नहीं करना चाहिये।'

ब्राह्मणकी बात सुनकर दमयन्तीकी आँखोंमें आँसू भर आये। फिर उसने पर्णादका सत्कार करके विदा किया और सुदेव ब्राह्मणको बुलाकर कहा—'आप शीघ्र ही अयोध्यामें पहुँचकर राजा ऋतुपर्णसे कहें कि भीमपुत्री दमयन्ती नलके जीने या मरनेका किसीको पता न होनेके कारण कल सूर्योदयके समय दूसरा स्वयंवर करना चाहती है। यदि आप पहुँच सकें तो वहाँ जाइये।' ब्राह्मण सुदेवने अयोध्या जाकर राजा ऋतुपर्णसे दमयन्तीकी सारी बातें ज्यों-की-त्यों कह दीं।

राजा ऋतुपर्णने बाहुकको बुलाकर दमयन्तीके स्वयंवरमें ले चलनेके लिये कहा। यह बात सुनकर राजा नल बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपने मनमें सोचा—'दमयन्तीने मेरी प्राप्तिके लिये ही यह युक्ति की होगी। वह पतिव्रता, तपस्विनी और दीना है। मैंने दुर्बुद्धिवश उसे त्यागकर बड़ी क्रूरता की। अपराध मेरा ही है। वह कभी ऐसा नहीं कर सकती।' बाहुकने राजाको विदर्भदेश पहुँचा देनेकी प्रतिज्ञा की और वे शीघ्रगामी घोड़े जोतकर एक रथ ले आये। राजा उसपर सवार होकर चल पड़े। रथ वायुके समान बड़े वेगसे जा रहा था। एक स्थानपर राजाका दुपट्टा गिर गया। राजाने कहा—'बाहुक! मेरा दुपट्टा गिर गया, रथ रोको।' बाहुक बोला—'राजन्! अब हम वहाँसे एक योजन दूर आ गये हैं।' यह आश्चर्यकी बात सुनकर राजा ऋतुपर्णने कहा—'मेरी गणितविद्याकी चतुराई देखो, सामनेके बहेड़ेके वृक्षमें पाँच करोड़ पत्ते और दो हजार पंचानवे फल हैं। तुम्हारी इच्छा हो तो गिन लो।' बाहुकने रथ खड़ा करके वृक्ष काटकर फल और पत्ते गिने तो ठीक उतने ही हुए। फिर राजा ऋतुपर्णने बाहुकसे

कहा—'मैं गणितविद्याके सिवा पासोंकी विद्या भी जानता हूँ।' बाहुक बोला—'आप मुझे पासोंकी विद्या सिखला दें और मैं आपको घोड़ोंकी विद्या सिखला दूँगा।' तब राजाने उसको पासोंकी विद्या सिखला दी और कहा—'घोड़ोंकी विद्या तुम मुझे फिर सिखला देना।' तत्पश्चात् राजा नलके शरीरसे कलियुग कर्कोटकका विष उगलता हुआ बाहर निकला। राजाने उसे शाप देना चाहा; किंतु कलियुगने राजाकी शरण होकर कहा—'आप मुझे शाप न दें, दमयन्तीके शापसे भी मैं महान् दुखी हूँ; जो आपके चरित्रको गायेंगे, उन्हें मेरा भय नहीं होगा।' राजा नल शान्त हो गये और कलियुग बहेड़ेके पेड़में घुस गया, जिससे वह वृक्ष ठूँठ-सा हो गया।

इसके अनन्तर राजा ऋतुपर्णको लेकर नल विदर्भदेशमें पहुँचे। उस समय रथकी घरघराहटको सुनकर दमयन्तीने निश्चय किया कि "इस रथके सारथि मेरे पतिदेव नल ही हैं। आज यदि मेरे पति मेरे पास नहीं आयेंगे तो मैं धधकती हुई आगमें कूद पड़ूँगी। मैंने कभी हँसी-खेलमें भी उनसे झूठी बात कही हो, उनका कोई अपकार किया हो, प्रतिज्ञा करके तोड़ दी हो, ऐसा याद नहीं आता। वे शक्तिशाली, क्षमावान्, वीर, दाता और एकपत्नीव्रती हैं, उनके वियोगमें मैं व्याकुल हो रही हूँ।' राजा ऋतुपर्णने वहाँ पहुँचकर राजा भीमके पास समाचार भेजा, तब भीमने ऋतुपर्णको अपने पास बुलाया। फिर कुशल-प्रश्नके अनन्तर राजा भीमके पूछनेपर राजा ऋतुपर्णने वहाँ स्वयंवरका कोई ढंग न देखकर यही बात कही कि 'मैं आपसे मिलने आया हूँ।' तब भीमने उनके ठहरने आदिका समुचित प्रबन्ध कर दिया।

इसके बाद दमयन्तीकी भेजी हुई केशिनी दासी नलके बच्चे इन्द्रसेनको और इन्द्रसेनीको लेकर बाहुकके पास गयी और ब्राह्मण पर्णादने जो बात ऋतुपर्णकी सभामें सुनायी थी, वह बात केशिनीने बाहुकसे कही तथा पूछा कि 'क्या आप राजा नलको जानते हैं?' बाहुकने उत्तर दिया कि 'राजा नल छिपे हुए हैं, उनकी पत्नी दमयन्ती ही उन्हें पहचान सकती है। राजा नलने अपनी पत्नीके साथ उचित व्यवहार नहीं किया, किंतु उन्होंने विपत्तिमें पड़कर पत्नीका त्याग किया था। अतः दमयन्तीको अपने पतिपर क्रोध नहीं करना चाहिये।' यह कहते हुए उनका चित्त खिन्न हो गया; फिर वे बच्चोंको देखकर उनसे प्यार करने लगे; उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। बाहुकने केशिनीसे कहा—'ये बच्चे मेरे बच्चोंके समान ही हैं, अतः मेरा हृदय भर आया। तुम बार-बार मेरे पास मत आओ।' केशिनीने बाहुकके सब चरित्र देखकर दमयन्तीके पास जाकर सारी बात कह सुनायी। केशिनी बोली—'उस सारथि बाहुकके देखनेमात्रसे ही खाली घड़ोंमें जल भर जाता है, सूर्यको दिखानेसे फूस जलने लगता है, आगमें उसके हाथ जलते नहीं, पुष्प मसल डालनेपर भी कुम्हलाते नहीं, बल्कि और भी महकते हैं तथा नीचे द्वारमें उसको झुकना नहीं पड़ता, द्वार ही ऊँचा हो जाता है। ऐसी आश्चर्यजनक बातें जो मैंने उसमें देखीं, वैसी आजतक किसीमें भी नहीं देखीं।' केशिनीकी बात सुनकर दमयन्तीको यह निश्चय हो गया कि ये राजा नल ही हैं।

तब उसने माता-पिताकी आज्ञा लेकर बाहुकको अपने महलमें बुला लिया। वह बाहुकसे बोली—'घोर वनमें निद्रामें अचेत पड़ी हुई अपनी स्त्रीको निषधराज नल ही त्याग सकते हैं। मैंने जीवन-

भरमें कोई अपराध नहीं किया, फिर भी वे मुझे वनमें सोती छोड़कर चले गये ।' इतना कहते ही दमयन्तीके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी । इसपर नल कहने लगे—'मैंने जान-बूझकर न तो राज्यका त्याग किया है और न तुम्हें त्यागा है । यह तो कलियुगकी करतूत है । मैं जानता हूँ कि जबसे तुम मुझसे बिछुड़ी हो तबसे रात-दिन मेरा ही स्मरण-चिन्तन करती रहती हो । मैंने उद्योग और तपस्याके बलपर कलियुगपर विजय प्राप्त कर ली है और अब हमारे दुःखका अन्त हो गया है । कलियुग अब मुझे छोड़कर चला गया, मैं एकमात्र तुम्हारे लिये ही यहाँ आया हूँ, पर यह तो बतलाओ कि तुम मेरे-जैसे प्रेमी और अनुकूल पतिको छोड़कर जिस प्रकार दूसरे पतिसे विवाह करनेके लिये तैयार हुई हो, क्या कोई दूसरी स्त्री ऐसा कर सकती है ?'

दमयन्तीने हाथ जोड़कर कहा—'आर्यपुत्र ! मुझपर दोष लगाना उचित नहीं है । आप जानते हैं कि मैंने देवताओंको छोड़कर आपको वरण किया है । मैंने आपको बुलानेके लिये ही यह युक्ति की थी । मैं जानती हूँ कि आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मनुष्य नहीं है, जो एक दिनमें घोड़ोंके रथसे सौ योजन पहुँच जाय । मैं आपके चरणोंका स्पर्श करके शपथपूर्वक सत्य-सत्य कहती हूँ कि मैंने कभी मनसे भी परपुरुषका चिन्तन नहीं किया है । यदि मैंने कभी मनसे भी पापकर्म किया हो तो इस संसारमें विचरनेवाले वायुदेव, भगवान् सूर्य और मनके देवता चन्द्रमा मेरे प्राणोंका नाश कर दें ।'

उसी समय वायुने अन्तरिक्षमें स्थित होकर कहा—'राजन् ! मैं सत्य कहता हूँ कि दमयन्तीने कभी कोई पाप नहीं किया है । इसने तीन वर्षतक अपने उज्ज्वल शीलव्रतकी रक्षा की है । हमलोग इसके

रक्षकके रूपमें रहे हैं और इसकी पवित्रताके साक्षी हैं। इसने स्वयंवरकी सूचना तो तुम्हें ढूँढ़नेके लिये ही दी थी।' जिस समय पवनदेवता यह बात कह रहे थे, उस समय आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और देवदुन्दुभियाँ बजने लगीं। यह देखकर राजा नलने नागराज कर्कोटकका दिया हुआ वस्त्र ओढ़कर उसका स्मरण किया, जिससे उनका शरीर तुरंत पूर्ववत् हो गया। दमयन्ती राजा नलको पहले रूपमें देखकर उनसे लिपट गयी और रोने लगी। राजा नलने भी प्रेमके साथ दमयन्तीको गले लगाया और दोनों बालकोंको छातीसे लगाकर उनके साथ प्यारकी बात करने लगे। सारी रात दमयन्तीके साथ बातचीत करनेमें ही बीत गयी।

प्रातःकाल होनेपर नहा-धो, सुन्दर वस्त्र पहनकर दमयन्ती और राजा नल भीमके पास गये और उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भीमने बड़े आनन्दसे उनका सत्कार किया और आश्वासन दिया। बात-की-बातमें यह समाचार सर्वत्र फैल गया, नगरके नर-नारी आनन्दमें भरकर उत्सव मनाने लगे। जब राजा ऋतुपर्णको यह बात मालूम हुई तब उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने नलको अपने पास बुलाकर क्षमा माँगी। राजा नलने उनके व्यवहारोंकी उत्तमता बतलाकर प्रशंसा की और उनका सत्कार किया। साथ ही उन्हें अश्वविद्या भी सिखा दी। राजा ऋतुपर्ण किसी दूसरे सारथिको लेकर अपने नगर चले गये।

तदनन्तर राजा नल अपने श्वशुरके दिये हुए रथमें सवार होकर और सोलह हाथी, पचास घोड़े और छः सौ पैदलोंको लेकर अपने नगरमें आये और पुष्करसे मिलकर बोले—'आओ, हमलोग पुनः

जूआ खेलें।' पुष्करने हँसकर कहा—'अच्छी वात है, अवकी बार तुम्हारे धन और दमयन्तीको भी जीत लूँगा।' जूआ होने लगा। राजा नलने पुष्करके राज्य, रत्नभंडार और उसके प्राणोंको भी जीत लिया और कहा—'यह सब राज्य मेरा हो गया; किंतु तुम अपना जीवन सुखसे बिताओ, मैं तुम्हारे प्राणोंको छोड़ देता हूँ। तुम्हारी सब वस्तुएँ और तुम्हारे पहले राज्यका भाग भी दे देता हूँ। तुमपर मेरा पहलेके समान ही प्रेम है। तुम मेरे भाई हो।' इस प्रकार कहकर नलने पुष्करको धैर्य दिया और उसे अपने हृदयसे लगाकर जानेको आज्ञा दी। पुष्करने हाथ जोड़कर राजा नलको प्रणाम किया और कहा—'जगत्में आपकी अक्षय कीर्ति हो। आप मेरे अन्नदाता और प्राणदाता हैं।' तदनन्तर पुष्कर अपने सेवकोंको लेकर अपने नगरमें चला गया। राजा नल भी उसके साथ गये और पुष्करको पहुँचाकर अपनी राजधानीमें लौट आये। सभी नागरिक प्रजा और मन्त्रिमण्डलके लोग राजा नलको पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने रोमाञ्चित शरीरसे हाथ जोड़कर राजा नलसे निवेदन किया—'राजेन्द्र! आज हमलोग दुःखसे छुटकारा पाकर सुखी हुए हैं।'

इसके पश्चात् राजा नलने सेना भेजकर दमयन्तीको बुलवाया। राजा भीमने अपनी पुत्रीको बहुत-सी वस्तुएँ देकर ससुराल भेज दिया। दमयन्ती अपनी दोनों संतानोंको लेकर महलमें आ गयी। राजा नल बड़े आनन्दके साथ समय बिताने लगे। राजा नलकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। वे धर्मबुद्धिसे प्रजाका पालन करने लगे। उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ करके भगवान्की आराधना की।

दमयन्तीके इस पवित्र चरित्रसे स्त्रियोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि पतिको ही सर्वस्व मानकर पतिकी सेवा करें। स्त्रीके लिये पतिके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

श्रीलक्ष्मीजीका उपदेश

इस विषयमें श्रीलक्ष्मीजीने देवताओंसे कहा है—

पतिर्बन्धुर्गतिर्भर्त्ता दैवतं गुरुरेव च।
सर्वस्माच्च परः स्वामी न गुरुः स्वामिनः परः॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ५७। ११)

'स्त्रियोंके लिये पति ही बन्धु है, पति ही गति है तथा पति ही देवता और गुरु है; उनके लिये सबसे बढ़कर पति ही है, पतिसे बढ़कर और कोई गुरु नहीं है।'

या स्त्री सर्वपरं द्वेष्टि पतिं विष्णुसमं गुरुम्।
कुम्भीपाके पचति सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ५७। १५)

'जो स्त्री विष्णुके समान पूजनीय सर्वश्रेष्ठ अपने पतिके साथ द्वेष करती है, वह जबतक चौदह इन्द्रोंकी आयु समाप्त होती है, तबतक कुम्भीपाक नरकमें पचायी जाती है।'

व्रतं चानशनं दानं सत्यं पुण्यं तपश्चिरम्।
पतिभक्तिविहीनाया भस्मीभूतं निरर्थकम्॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ५७। १६)

'पति-भक्तिसे रहित स्त्रीके लिये व्रत, उपवास, दान, सत्य, पुण्य, बहुत समयतक किया हुआ तप—ये सब भस्मके सदृश और व्यर्थ हैं।'

पतिसेवा व्रतं स्त्रीणां पतिसेवा परं तपः।
पतिसेवा परो धर्मः पतिसेवा सुरार्चनम्॥
पतिसेवा परं सत्यं दानतीर्थानुसेवनम्।
सर्वदेवमयः स्वामी सर्वदेवमयः शुचिः॥
सर्वपुण्यस्वरूपश्च पतिरूपी जनार्दनः।
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ५७। १८—२०)

'स्त्रियोंके लिये पतिसेवा ही व्रत है, पतिसेवा ही परम तप है, पतिसेवा ही परम धर्म और पतिसेवा ही देवपूजन है, उनके लिये पतिसेवा ही परम सत्य, दान और तीर्थसेवन है। स्त्रियोंके लिये पति ही सर्वदेवमय है, उनके लिये पतिरूप जनार्दन सर्वदेवमय, परम पवित्र और सर्वपुण्यस्वरूप है।'

दक्षकन्याओंने अपने पितासे कहा है—

पतिरेव गतिः स्त्रीणां पतिः प्राणाश्च सम्पदः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां हेतुः सेतुर्भवार्णवे॥
(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ९। ६४)

'स्त्रियोंके लिये पति ही गति और पति ही प्राण हैं तथा पति सर्वसम्पदाएँ है। उनके लिये पति ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिका हेतु तथा संसार-समुद्रसे पार होनेके लिये पुलस्वरूप है।'

पतिर्नारायणः स्त्रीणां व्रतं धर्मः सनातनः।
सर्वं कर्म वृथा तासां स्वामिनां विमुखाश्च याः॥
(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ९। ६५)

'स्त्रियोंके लिये पतिदेव ही साक्षात् नारायण है। वही व्रत और सनातनधर्मस्वरूप है। जो स्त्रियाँ स्वामीसे विमुख होती हैं, उनके सम्पूर्ण कर्म वृथा हैं।'

स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा।
सर्वदानानि पुण्यानि व्रतानि नियमाश्च ये॥
देवार्चनं चानशनं सर्वाणि च तपांसि च।
स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ९। ६६-६७)

'जो सब तीर्थोंमें स्नान करना, समस्त यज्ञोंमें दक्षिणा देना, सब प्रकारके दान और दूसरे पुण्यकर्म तथा जो सब प्रकारके व्रत, नियम, देवपूजन, उपवास, सब प्रकारके तप आदि हैं—ये सब मिलकर पतिकी चरणसेवाके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकते।'

सर्वेषां बान्धवानां च प्रियः पुत्रश्च योषिताम्।
स एव स्वामिनोंऽशश्च शतपुत्रात्परः पतिः॥

(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ९। ६८)

'स्त्रियोंके लिये सब बान्धवोंसे बढ़कर प्रिय पुत्र होता है, वह भी पतिका अंश होता है, इसलिये सौ पुत्रोंसे भी बढ़कर पति-देव है।'

पतितं रोगिणं दुष्टं निर्धनं गुणहीनकम्।
युवानं चैव वृद्धं वा भजेत्तं न त्यजेत्सती॥

(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ९। ७०)

'सती स्त्रीको चाहिये कि उसका पति पतित हो, रोगी हो, दुष्ट हो, निर्धन हो, गुणहीन हो, युवा हो, चाहे बूढ़ा हो, उसकी सेवा ही करती रहे, उसका परित्याग न करे।'

सगुणं निर्गुणं वापि द्वेष्टि या संत्यजेत्पतिम् ।
पच्यते कालसूत्रे सा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥

(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० ९ । ७१)

'जो स्त्री गुणवान् या गुणरहित पतिके साथ भी द्वेष करती है अथवा उसका परित्याग कर देती है, वह जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक कालसूत्र नामक नरकमें पकायी जाती है ।'

जरत्कारु मुनिका उपदेश

श्रीजरत्कारु मुनिने भी अपनी पत्नीसे पतिसेवाका माहात्म्य बतलाते हुए कहा है—

तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत् ।
भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम् ॥

(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० ४६ । ३३)

'पतिका अप्रिय करनेवाली स्त्रीका तप, उपवास, व्रत और दान आदि जो कुछ भी पुण्यकर्म हैं, सब-के-सब निष्फल हो जाते हैं ।'

यया पतिः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया ।
पतिव्रताव्रतार्थं च पतिरूपी हरिः स्वयम् ॥

(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० ४६ । ३४)

'जिस स्त्रीके द्वारा पति पूजा गया, उसके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण-का पूजन हो चुका । पतिव्रता स्त्रीके व्रत-पालन करनेके लिये पति ही साक्षात् परमेश्वर है ।'

सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम् ।
सर्वं तपो व्रतं सर्वमुपवासादिकं च यत् ॥

सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम् ।
तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० ४६ । ३५-३६)

'समस्त दान, सम्पूर्ण यज्ञ, समस्त तीर्थोंका सेवन, समस्त तप और समस्त व्रत तथा और भी जितने सब उपवासादिक धर्म हैं तथा जो सत्यभाषण, समस्त देवताओंका पूजन आदि सत्कर्म हैं, वे सब पतिसेवाकी सोलहवीं कलाके बराबर नहीं हो सकते ।'

सुपुण्ये भारते वर्षे पतिसेवां करोति या ।
वैकुण्ठं स्वामिना सार्द्धं सा याति ब्रह्मणः पदम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० ४६ । ३७)

'जो स्त्री इस पुण्यभूमि भारतवर्षमें पतिसेवा करती है, वह अपने पतिके सहित परब्रह्म परमात्माके स्थान वैकुण्ठको प्राप्त होती है ।'

विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम् ।
असत्कुलप्रजाता या तत्फलं श्रूयतां सति ॥
कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जिता ॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० ४६ । ३८-३९)

'हे सती ! जो बुरे कुलमें उत्पन्न हुई स्त्री अपने पतिका अप्रिय कार्य करती है तथा प्रियतमको अप्रिय वचन कहती है, उसका फल सुनो; वह स्त्री जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ी रहती है और उसके बाद पति और पुत्रसे रहित चाण्डाली होती है ।'

सती लोपामुद्राकी कथा

मित्रावरुणके पुत्र महर्षि अगस्त्य बड़े ही तपस्वी थे। उनकी धर्मपत्नी लोपामुद्रा भी बहुत उच्चकोटिकी पतिव्रता स्त्री थीं। इनके पातिव्रत्यका वर्णन स्कन्दपुराणके काशीखण्डके पूर्वार्द्धमें चौथे अध्यायमें विस्तारपूर्वक किया गया है। उसका सार यहाँ दिया जाता है। यदि विस्तारसे देखना चाहें तो वहाँ देख सकते हैं।

एक समय सब देवताओंके साथ बृहस्पतिजी अगस्त्य ऋषिके आश्रमपर गये। आश्रमके पास विचरनेवाले पशु-पक्षियोंको भी मुनियोंके समान वैरभावरहित और प्रेमपूर्वक बर्ताव करते देखकर देवताओंने यह समझा कि यह इस पुण्यक्षेत्रका प्रभाव है। फिर उन्होंने मुनिकी पर्णकुटी देखी जो कि होम और धूपकी सुगन्धसे सुवासित तथा बहुत-से ब्रह्मचारी विद्यार्थियोंसे सुशोभित थी। पतिव्रता-शिरोमणि लोपामुद्राके चरण-चिह्नोंसे चिह्नित पर्णकुटीके आँगनको देखकर सब देवताओंने नमस्कार किया। देवताओंको आये देखकर मुनि खड़े हो गये और सबका यथायोग्य आदर-सत्कार करके आसनपर बैठाया।

तदनन्तर बृहस्पतिजीने कहा—'महाभाग अगस्त्यजी! आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और महात्मा पुरुषोंके लिये भी माननीय हैं। आपमें तपस्याकी सम्पत्ति है, स्थिर ब्रह्मतेज है, पुण्यकी उत्कृष्ट शोभा, उदारता तथा विवेकशील मन है। आपकी सहधर्मिणी ये कल्याणमयी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता हैं, आपके शरीरकी छायाके तुल्य हैं। इनकी चर्चा भी पुण्यदायिनी है। मुने! ये आपके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती, आपके खड़े होनेपर स्वयं भी खड़ी रहती, आप-

के सो जानेपर सोती और आपसे पहले जाग उठती हैं। 'आपकी आयु बढ़े'—इस उद्देश्यसे ये कभी आपका नाम उच्चारण नहीं करती हैं। दूसरे पुरुषका नाम भी ये कभी अपनी जीभपर नहीं लातीं। ये कड़वी बात सह लेती हैं, किंतु स्वयं बदलेमें कोई कटु वचन मुँहसे नहीं निकालतीं। आपके द्वारा ताड़ना पाकर भी प्रसन्न ही होती हैं। जब आप इनसे कहते हैं कि 'प्रिये! अमुक कार्य करो,' तब ये उत्तर देती हैं—'स्वामिन्! आप समझ लें, वह काम पूरा हो गया। आपके बुलानेपर ये घरके आवश्यक काम छोड़कर भी तुरंत चली आती हैं। ये दरवाजेपर देरतक नहीं खड़ी होतीं, न द्वारपर बैठती और न सोती हैं। आपकी आज्ञाके बिना कोई वस्तु किसीको नहीं देतीं, आपके न कहनेपर भी ये स्वयं ही आपके इच्छानुसार पूजाका सब सामान जुटा देती हैं। नित्य-कर्मके लिये जल, कुशा, पत्र-पुष्प और अक्षत आदि प्रस्तुत करती हैं। सेवाके लिये अवसर देखती रहती हैं और जिस समय जो आवश्यक अथवा उचित है, वह सब बिना किसी उद्वेगके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित करती हैं। आपके भोजन करनेके बाद बचा हुआ अन्न और फल आदि खाती और आपकी दी हुई प्रत्येक वस्तुको महाप्रसाद कहकर शिरोधार्य करती हैं। देवता, पितर और अतिथियोंको तथा सेवकों, गौओं और याचकोंको भी उनका भाग अर्पण किये बिना ये कभी भोजन नहीं करतीं। वस्त्र, आभूषण आदि सामग्रियोंको स्वच्छ और सुरक्षित रखती हैं। ये गृहकार्यमें कुशल हैं, सदा प्रसन्न रहती हैं, फजूल खर्च नहीं करतीं एवं आपकी आज्ञा लिये बिना ये कोई उपवास और व्रत आदि नहीं करती हैं। जनसमूहके द्वारा मनाये

जानेवाले उत्सवोंका दर्शन दूरसे ही त्याग देती हैं। तीर्थयात्रादि तथा विवाहोत्सवदर्शन आदि कार्योंके लिये भी ये कभी नहीं जातीं। रजस्वला होनेपर ये तीन राततक अपना मुँह पतिको नहीं दिखातीं। भलीभाँति स्नान कर लेनेपर पहले पतिका ही मुँह देखती हैं, और किसीका नहीं; अथवा यदि पतिदेव उपस्थित न हों तो मन-ही-मन उनका ध्यान करके सूर्यदेवका दर्शन करती हैं।

अतः पतिकी आयुवृद्धि चाहती हुई पतिव्रता स्त्री अपने शरीरसे हल्दी, रोली, सिन्दूर, काजल, चोली, कवजा, पान और शुभ माङ्गलिक आभूषण कभी दूर न करे। केशोंको सँवारना, वेणी गूँथना तथा हाथ और कान आदिके आभूषणोंको धारण करना आदि शृङ्गार कभी बंद न करे।

स्त्रियोंका यही उत्तम व्रत, यही परम धर्म और यही एकमात्र देव-पूजन है कि वे पतिके वचनको न टालें। पति चाहे नपुंसक, दुर्दशा-ग्रस्त, रोगी, वृद्ध हो अथवा अच्छी स्थितिमें या बुरी स्थितिमें हो, एकमात्र अपने पतिका कभी त्याग न करे। पतिके हर्षित होनेपर सदा हर्षित और विषादयुक्त होनेपर विषादयुक्त हो। पतिपरायणा सती सम्पत्ति और विपत्तिमें भी पतिके साथ एकरूप होकर रहे। तीर्थस्नानकी इच्छा रखनेवाली नारी अपने पतिका चरणोदक पीये; क्योंकि उसके लिये केवल पति ही भगवान् शिव और विष्णुसे बढ़कर है। जो पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके व्रत और उपवास आदिके नियम पालती है, वह अपने पतिकी आयु हरती है और मरनेपर नरकको प्राप्त होती है। स्त्रीके लिये पति ही देवता है, पति ही गुरु

है और पति ही धर्म, तीर्थ एवं व्रत है । इसलिये स्त्री सबको छोड़कर केवल पतिकी सेवा-पूजा करे ।*

इस प्रकार कहकर बृहस्पतिजी लोपामुद्रासे बोले —पतिके चरणारविन्दोंपर दृष्टि रखनेवाली महामाता लोपामुद्रे ! हमने यहाँ काशीमें आकर जो गङ्गास्नान किया है, उसीका यह फल है कि हमें आपका दर्शन प्राप्त हुआ है ।

स्त्रियोंको चाहिये कि रजस्वला होनेपर तीन रात्रितक घरकी वस्तुओंको न छूयें; क्योंकि उस समय वे अपवित्र रहती हैं । आजकल स्त्रियाँ जब स्त्रीधर्मसे युक्त होती हैं, तब घरकी वस्तुओंको तथा बालकोंको छू लेती हैं, ऐसा करना बहुत ही खराब है । स्त्रियोंको इन तीन दिनोंमें

---

* इदमेव व्रतं स्त्रीणामयमेव परो वृषः ।
इयमेका देवपूजा भर्तुर्वाक्यं न लङ्घयेत् ॥
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव वा ।
सुस्थितं दुःस्थितं वापि पतिमेकं न लङ्घयेत् ॥
हृष्टा हृष्टे विषण्णास्या विषण्णास्ये प्रिये सदा ।
एकरूपा भवेत्पुण्या सम्पत्सु च विपत्सु च ॥
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।
शङ्करादपि विष्णोर्वा पतिरेकोऽधिकः स्त्रियाः ॥
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्य या चरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ॥
भर्ता देवो गुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ॥
(स्कन्द० काशी० पू० ४ । ३०—३२, ३४, ३५, ४८)

बड़ी सावधानीसे जीवन बिताना चाहिये । इस समय वह आँखोंमें अंजन न लगावे, उबटन न लगावे, नदी आदिमें स्नान न करे, पलँगपर न सोकर भूमिपर शयन करे, दिनमें न सोवे, किसीसे हँसी-मजाक न करे और न घरमें रसोई आदिका काम ही करे । व्यासस्मृतिमें बतलाया है—

रजोदर्शनतो दोषात् सर्वमेव परित्यजेत् ।
सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर्गृहे वसेत् ॥
(२ । ३७)

'स्त्रीको चाहिये कि रजोदर्शनरूप अशुद्धिके कारण वह शीघ्र घरके सब काम-काज छोड़ दे और सब लोगोंकी दृष्टिसे अलग रहे तथा लज्जाशीला होकर घरके भीतर ही रहे ।'

एकाम्बरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता ।
मौनिन्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्भिरचञ्चला ॥
(व्यास० २ । ३८)

'दीनभावसे एक वस्त्र ही धारण करे, स्नान और भूषणादि छोड़ दे । मौन होकर नीचा मुख किये रहे तथा नेत्र, हाथ और पैरोंसे चञ्चल न हो ।'

अश्नीयात् केवलं भक्तं नक्तं मृण्मयभाजने ।
स्वपेद् भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥
(व्यास० २ । ३९)

'रातके समय मिट्टीके पात्रमें एक बार भोजन करे । भूमिपर सोवे । इस प्रकार प्रमादरहित होकर तीन दिन बितावे ।'

स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ ।
विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥
कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥
(व्यास० २ । ४०-४१)

'तीन रात्रि बीतनेपर सूर्योदय होनेके बाद वस्त्रोंके सहित स्नान करे। इसके बाद पतिके मुखका दर्शन करनेपर वह धर्मपूर्वक शुद्ध हो जाती है। शुद्ध होनेपर वह फिर पहलेकी तरह ही घरका सब काम करे।'

स्त्रियोंको रजस्वला होनेपर पति-सहवास नहीं करना चाहिये। पति इच्छा करे तो उसे समझाकर अस्वीकार कर देना चाहिये; क्योंकि उस अवस्थामें सहवास करनेपर पतिके तेज, आयु और बलका क्षय होता है। श्रीमनुजी कहते हैं—

नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने ।
समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥
(मनु० ४ । ४०)

'कामार्त हो तब भी मासिक धर्मके समय अपनी स्त्रीके पास न जाय और उसके साथ एक बिछौनेपर भी न सोवे।'

रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ॥
(मनु० ४ । ४१)

'क्योंकि जो मनुष्य रजस्वला स्त्रीके पास जाता है, उसके बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयुका भी ह्रास होता है।'

तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् ।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते ॥
(मनु० ४ । ४२)

'उस रजस्वला स्त्रीके साथ समागमका त्याग करनेवाले मनुष्यके बुद्धि, तेज, बल, नेत्र और आयु—ये सब निश्चय ही बढ़ते हैं ।'

जो स्त्री और पुरुष एक-दूसरेसे प्रेम करते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं एवं ऋतुकालमें ही सहगमन करते हैं, उनकी संतान उत्तम होती है ।

श्रीमनुजीने बतलाया है—

संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥
(मनु० ३ । ६०)

'जिस कुलमें स्त्रीसे पति नित्य प्रसन्न रहता है और उसी प्रकार पतिसे स्त्री प्रसन्न रहती है, वहाँ निश्चय ही अचल कल्याण होता है ।'

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते ॥
(मनु० ३ । ६१)

'यदि स्त्री वस्त्राभूषणादिसे शोभायमान नहीं होती तो वह पतिको प्रमुदित नहीं कर सकती और पतिके प्रमुदित हुए बिना अच्छी संतान नहीं होती ।'

इसलिये दोनोंको परस्पर प्रमुदित करना चाहिये और शास्त्रोक्त कालमें ही सहवास करना चाहिये ।

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥
(मनु० ३ । ४५)

'मनुष्यको सदा अपनी स्त्रीमें ही अनुरक्त होना चाहिये तथा उसके साथ ऋतुकालमें गमन करना चाहिये । ऐसे व्रतवाला पुरुष रतिकी इच्छासे पर्व-दिनोंको छोड़कर उसके पास जाय ।'

ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सद्भिर्गर्हितैः ॥
(मनु० ३ । ४६)

'सज्जनोंसे निन्दित अन्य चार दिनोंसहित जो सोलह रात्रियाँ हैं, वह स्त्रियोंके लिये स्वाभाविक ऋतुकाल माना गया है ।'

तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥
(मनु० ३ । ४७)

'उनमें पहलेकी चार और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रात्रियाँ निन्दित हैं और शेष दस रात्रियाँ प्रशस्त हैं ।'

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥
(मनु० ३ । ४८)

'युग्म (छठी, आठवीं आदि) रात्रियोंमें संगम करनेपर पुत्र होते हैं और अयुग्म (पाँचवीं, सातवीं आदि) रात्रियोंमें संगम करनेसे कन्याएँ उत्पन्न होती हैं । इसलिये पुत्र चाहनेवालेको ऋतुके समय युग्म रात्रियोंमें स्त्रीके पास जाना चाहिये ।'

स्त्रीको उचित है कि वह शास्त्रकी मर्यादाके अनुसार कम-से-कम पुरुष-सहवास करे। पतिको भी समझाकर इस प्रवृत्तिसे रोकना चाहिये; क्योंकि अधिक सहवाससे बल, बुद्धि, वीर्य, तेज और आयुकी हानि होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

स्त्रीको उचित है कि अपने पतिके पिता, पितामह आदिकी श्राद्ध-तिथिपर आलस्यरहित हो प्रेमपूर्वक सब कार्य करे। आजकल लोग महालय तथा वार्षिक श्राद्धके समय केवल तर्पण करके ब्राह्मण-भोजन करा देते हैं, श्राद्ध प्रायः बहुत ही कम लोग करते हैं, पर श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। शास्त्रदृष्टिसे विधिसहित श्राद्ध करना आवश्यक है। पितरोंकी तृप्तिके लिये निष्कामभावसे श्राद्ध किया जाय तो पितर तो तृप्त होते ही हैं, कर्तव्यका पालन करनेके कारण श्राद्ध-कर्त्ताकी आत्माका भी कल्याण होता है और सकामभावसे श्राद्ध करके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक मन्त्रोंसे शास्त्रविधिके अनुसार श्राद्धके मध्यमपिण्डका स्त्री भक्षण करती है तो आयु और बुद्धिसे युक्त, यशस्वी, धार्मिक, सात्त्विक पुत्र उत्पन्न होता है। श्रीमनुजीने कहा है—

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी॥

(मनु० ३। २६२)

'पितरोंके पूजनमें लगी हुई तथा अच्छे पुत्रको चाहनेवाली पतिव्रता धर्मपत्नी पिण्डोंमेंसे मध्यमपिण्डका 'आधत्त पितरो गर्भम्' इस मन्त्रोच्चारणपूर्वक शास्त्रविधिके अनुसार भोजन करे।'

आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्त्विकं धार्मिकं तथा॥

(मनु० ३। २६३)

'वह (ऐसा करनेवाली) पत्नी बड़ी आयुवाला, यश और बुद्धिसे युक्त, धनवान्, प्रजावान्, सात्त्विक और धार्मिक पुत्र उत्पन्न करती है।'

घरवालोंको चाहिये कि सर्वदा साध्वी स्त्रियोंका सत्कार करें, हमारे शास्त्रोंमें स्त्रियोंके सत्कारका बड़ा महत्त्व बतलाया गया है। जो मनुष्य शास्त्रोंके रहस्यको नहीं जानते, वे कह दिया करते हैं कि शास्त्रकारोंने स्त्रियोंपर अत्याचार किया है, किंतु बात ऐसी नहीं है। जो लोग स्त्रियोंको अपने पैरोंकी जूतीके समान समझते, उनका अनादर करते और गालियाँ देते हैं तथा जो उनपर मारपीट आदि अत्याचार करते हैं, वे सब पापके भागी होते हैं। स्त्रियोंका इस प्रकार अनादर करनेवाले भाइयोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे ऐसा कभी न करें। स्त्रियाँ अपमान करनेके योग्य नहीं हैं, बल्कि उनका मन, वाणी, शरीरसे, वस्त्र, आभूषण, खान-पान और द्रव्यद्वारा सदा आदर-सत्कार करना चाहिये। जिन घरोंमें स्त्रियोंका सत्कार नहीं होता, वे घर सम्पत्तिसहित नष्ट हो जाते हैं एवं उनके किये हुए यज्ञ-दान निष्फल होते हैं।

श्रीमनु महाराज कहते हैं—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥
(मनु० ३। ५६)

'जहाँ स्त्रियोंका आदर किया जाता है, वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सब कार्य निष्फल होते हैं।'

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥
(मनु० ३। ५७)

'जिस कुलमें जामि (स्त्री, पुत्रवधू) स्त्रियाँ शोक करती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ ये शोक नहीं करती हैं, वह कुल निश्चय ही सदा उन्नत होता रहता है।'

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः ।
तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ॥
(मनु० ३ । ५८)

'जिन स्त्रियोंका आदर नहीं होता, वे जिन घरोंको शाप देती हैं, वे घर कृत्यासे मारे जानेके समान सब प्रकारसे नष्ट हो जाते हैं।'

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥
(मनु० ३ । ५९)

'इसलिये वैभव चाहनेवाले मनुष्योंको चाहिये कि आदरके अवसरोंपर तथा उत्सवोंमें वस्त्र, अलंकार और भोजन आदिसे स्त्रियोंका सदा आदर करें।'

श्रीविदुरजीने भी कहा है—

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः ॥
(महा० उद्योग० ३८ । ११)

'घरको उज्ज्वल करनेवाली और पवित्र आचरणवाली महाभाग्यवती स्त्रियाँ पूजा (सत्कार) करनेयोग्य हैं; क्योंकि वे घरकी लक्ष्मी कही गयी हैं। अतः उनकी विशेषतासे रक्षा करे।'

लौकिक और पारलौकिक सभी कार्योंके सम्पादनमें मूल आधार स्त्रियाँ ही हैं। अतः मनुष्यको इनका आदर-सम्मान यत्नपूर्वक करना

चाहिये । श्रीस्कन्दपुराणमें ब्रह्मखण्डके धर्मारण्य-माहात्म्य-प्रकरणमें बतलाया है—

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।
भार्या धर्मफलायैव भार्या संतानवृद्धये ॥
(७ । ६४)

'गृहस्थ-आश्रमका मूल भार्या है, सुखका मूल कारण भार्या है, धर्मफलकी प्राप्ति तथा संतानवृद्धिका कारण भी भार्या ही है ।'

श्रीमनुस्मृतिमें भी लिखा है—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥
(९ । २६)

'परम सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ संतानोत्पादनके लिये हैं । ये सर्वथा सम्मानके योग्य और घरकी शोभा हैं । घरकी स्त्री और लक्ष्मीमें कोई भेद नहीं है ।'

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम् ॥
(९ । २७)

'संतान उत्पन्न करना, उत्पन्न हुई संतानका भलीभाँति पालन-पोषण करना और प्रतिदिन भोजन आदि बनाकर लोकयात्राका निर्वाह करना—यह सब प्रत्यक्षरूपसे स्त्रीके अधीन है ।'

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च ह ॥
(९ । २८)

'संतानकी प्राप्ति, धर्मकार्यका अनुष्ठान, सेवाकार्य, उत्तम (धर्मयुक्त) रति, पितरोंकी स्वर्गप्राप्ति और अपनी भी पारलौकिक उन्नति—निःसंदेह स्त्रीके अधीन है।'

कोई-कोई स्त्री ऐसी दुष्ट स्वभावकी होती है कि वह पतिको झूठा-सच्चा सिखलाकर अपनी सास, ननद, देवरानी, जेठानी आदिको पतिके द्वारा कष्ट दिलाती है और स्वयं भी नाना प्रकारकी जली-कटी बातें सुनाकर उनको दुखाती है। ऐसा अत्याचार करनेवाली स्त्रियाँ भी पापकी भागिनी होती हैं। ऐसी स्त्रियोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे ऐसा अनुचित कार्य कभी न करें तथा दूसरी स्त्रियाँ यदि ऐसा करती हों तो उनको भी समझाकर रोक दें। उन्हें यह विचार करना चाहिये कि जिस प्रकार हमारा कोई सम्मान करता है तो हमें अच्छा मालूम देता है और अपमान करता है तो बुरा मालूम देता है, इसी प्रकार मैं भी दूसरेका सम्मान करूँगी तो उसे अच्छा लगेगा और अपमान करूँगी तो उसे बुरा मालूम होगा। ऐसा सोचकर अपने घरमें सास-ननद आदि जितनी भी स्त्रियाँ हैं, उनको न तो पतिके द्वारा ही कष्ट पहुँचावे और न स्वयं ही कष्ट दे। उनका स्वयं और पतिके द्वारा भी सदा आदर-सत्कार करे तथा सुख पहुँचावे। इस प्रकार करनेपर वे प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं, जिससे इस लोक और परलोक—दोनोंमें हित होता है।

इसी प्रकार सास और ननदको भी चाहिये कि वे अपने पुत्र और भाईको लगाकर निर्दोष, निरोह बहू या भाभीको कष्ट न दिलावें, न स्वयं ही उसे कष्ट दें।

विधवा माताओंका तो विशेषरूपसे आदर-सत्कार करना चाहिये। जिस किसी प्रकारसे हो, उन्हें प्रसन्न रक्खे; क्योंकि अपने धर्मका पालन करनेवाली विधवा सांसारिक सुखका त्याग करनेके कारण तपस्विनी है। उसकी तन, मन, धन आदिके द्वारा सब प्रकारसे सेवा करके सुख पहुँचाना ही कर्तव्य है। इस प्रकार करनेपर उनके आशीर्वादसे इस लोक और परलोक दोनोंमें सब प्रकारसे हित होता है।

बहुत-सी सुहागिन स्त्रियाँ विधवा स्त्रियोंकी देखा-देखी, विशेष उपवास-व्रत आदि करनेमें अपना कल्याण समझकर उनका अनुष्ठान करती हैं, यह शास्त्रविरुद्ध है। अत्रिस्मृतिमें लिखा है—

जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥
(१।१३४)

'जो स्त्री पतिके जीते हुए निराहार उपवास-व्रतका आचरण करती है, वह स्त्री स्वामीकी आयुका हरण करती है और नरकको प्राप्त होती है।'

इसलिये सुहागिन स्त्रियोंको निराहार व्रत नहीं करना चाहिये*।

विधवाओंके साथ व्यवहार और उनका धर्म

विधवा स्त्रियाँ तो ऐसे ही घोर दुखी हैं, फिर उनको जो दूसरे स्त्री-पुरुष दुःख देते हैं, तंग करते हैं, वे इस लोकमें निन्दाको पाते

* गौरीव्रत, सौभाग्यसुन्दरीव्रत, चतुर्थीव्रत, सावित्रीव्रत तथा हरतालिका-व्रत आदि जिन उपवासव्रतोंका सधवा स्त्रियोंके लिये विशेषरूपसे विधान है और जिनमें निराहार न रहनेसे उल्टे दोष होता है तथा जिनके करनेसे सुहाग-सुख बढ़ता है एवं पतिका कल्याण होता है, उन व्रतोंको सुहागिन स्त्रियोंके करनेमें आपत्ति नहीं है, बल्कि उन्हें अवश्य करना चाहिये।—स०

हैं और मरनेपर घोर नरककी प्राप्ति होती है। पतिके मरनेपर विधवा स्त्रीका पीहर और ससुराल दोनोंमें बहुत जगह तिरस्कार होता है और उसपर अनेक प्रकारके अत्याचार होते हैं। इससे उसको जो दुःख होता है, उसका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। विधवाओंकी यह कष्टमयी स्थिति प्रत्यक्ष देखनेमें भी आती है। थोड़ा ध्यान देकर देखनेसे हरेक आदमीको इसका अनुभव हो सकता है। अतः प्रत्येक नर-नारीका कर्तव्य है कि अपनी जानकारीमें जो दुखी विधवा स्त्री हो, उसकी यथाशक्ति तन, मन, धनसे सहायता करे।

विधवा माता-बहिनोंको चाहिये कि वे शास्त्रमें बतलाये हुए अपने कर्तव्यकी ओर ध्यान दें तथा ऐश-आराम, भोग, स्वाद-शौक आदि जो शारीरिक सुख हैं, उनको नाशवान्, क्षणभङ्गुर समझकर उनका त्याग कर दें। सांसारिक सुखभोगके लिये दूसरोंके बहकानेपर भी कभी नाता या विधवा विवाह नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह सुखरूपमें प्रतीत होता है, पर वास्तवमें है दुःख ही। जो भोले-भाले नर-नारी उसे सुख बतलाकर—विधवाको पुनर्विवाह करनेको कहते हैं, वे भूलमें हैं और दयाके पात्र हैं; क्योंकि उन स्त्रियोंसे पुनर्विवाह-जैसा घृणित और अनुचित कार्य कराकर इस लोक और परलोकसे भ्रष्ट कर देना और परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त सुखसे वञ्चित रख देना बड़ी भारी गलती है। उनको चाहिये कि वे उनको, जो वास्तवमें सुख नहीं है, केवल धोखा है, उससे हटावें और आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन करने, घरका काम-काज करने तथा ईश्वरकी भक्ति करनेके लिये शिक्षा दें।

वर्तमान समयमें अशिक्षित होनेके कारण कोई-कोई विधवा माता-बहिन अज्ञानवश ईश्वर और धर्मको न माननेवाले नास्तिक पुरुषोंके बहकावेमें आकर पुनः विवाह करनेको तैयार हो जाती हैं, उन भोली माता-बहिनोंसे प्रार्थना है कि वे सतीत्वके नाशकी शिक्षा देनेवाले उन शास्त्रानभिज्ञ नास्तिक नर-नारियोंकी बात कभी न सुनें; क्योंकि शास्त्र-विरुद्ध होनेके कारण उनकी वे बातें विश्वास करने योग्य नहीं हैं; बल्कि भ्रममें डालनेवाली हैं। उनमें कोई-कोई तो ऐसे धूर्त होते हैं कि वे अपने घरकी विधवा स्त्रियोंका पुनः विवाह न करके दूसरोंकी स्त्रियोंके धर्म-कर्म तथा लोक-परलोकको नष्ट करनेके लिये ही ऐसा उपदेश देते फिरते हैं। अतः माता-बहिनोंको चाहिये कि वे उनके बहकावेमें न फँसें तथा ऐसा निन्दित और निर्लज्ज कार्य करके अपने पीहर और ससुरालको कलङ्कित न करें एवं अपने लोक-परलोकको नष्ट न करें।

पतिके मरनेके बाद विधवा स्त्रीको किस प्रकार अपना जीवन बिताना चाहिये, इस विषयमें मनु महाराज कहते हैं—

कामं तु क्षपयेद् देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥
(५।१५७)

'विधवा स्त्री फल-फूल, कन्द-मूल आदि सात्त्विक पदार्थोंसे जीवन-निर्वाह करती हुई भले ही अपने शरीरको सुखा डाले; परंतु पतिकी मृत्युके बाद किसी पराये पुरुषका कभी नाम भी न ले।'

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥
(मनु० ५।१५८)

'पतिव्रता स्त्रियोंका जो सर्वोत्तम धर्म है, उसे पानेकी इच्छा रखनेवाली विधवा मृत्युपर्यन्त क्षमाशील, मन-इन्द्रियोंको संयममें रखनेवाली तथा ब्रह्मचारिणी रहे ।'

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम् ।
दिवङ्गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥
(मनु० ५ । १५९)

'कई हजार कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मणोंने कुलमें बिना संतान उत्पन्न किये ही अपने ब्रह्मचर्यके प्रभावसे स्वर्गलोक प्राप्त किया है ।'

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥
(मनु० ५ । १६०)

'पतिकी मृत्युके बाद ब्रह्मचर्यव्रतमें दृढ़तापूर्वक स्थिर रहनेवाली साध्वी स्त्री पुत्रहीना होनेपर भी स्वर्गलोकमें जाती है, जैसे कि वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी (पुत्रके बिना भी) स्वर्गमें गये हैं ।'

अपत्यलोभाद् या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते ।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते ॥
(मनु० ५ । १६१)

'किंतु जो स्त्री पुत्रके लोभसे पतिका उल्लङ्घन (व्यभिचार) करती है, वह इस लोकमें तो निन्दा पाती ही है, पतिलोकसे भी वञ्चित रह जाती है ।'

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥
(मनु० ५ । १६२)

'पर-पुरुषसे उत्पन्न हुई संतान यहाँ अपनी संतान नहीं मानी जाती, इसी प्रकार परायी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुई संतान भी अपना नहीं है। कुलीन स्त्रियोंके लिये कहीं भी दूसरा पति बनानेका उपदेश नहीं दिया गया है।'

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥
(मनु० ९।४७)

'कुटुम्बमें धन आदिका बँटवारा एक बार ही होता है, कन्या-दान एक बार ही दिया जाता है तथा 'मैं दूँगा' यह प्रतिज्ञा भी एक ही बार की जाती है; सत्पुरुषोंके लिये ये तीन बातें एक-एक बार ही होती हैं।'

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।
अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्॥
(मनु० ९।६४)

'द्विजातिको उचित है कि अन्य (देवर आदि) में विधवाको नियुक्त न करे; क्योंकि अन्य (देवर आदि) में नियुक्त कर देनेसे वे सनातन धर्मको नष्ट करती हैं।'

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥
(मनु० ९।६५)

'विवाहके मन्त्रोंमें कहीं भी नियोगकी चर्चा नहीं है, विवाहकी विधिमें विधवाका पुनर्दान भी नहीं कहा गया है।'

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः ।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति ॥
(मनु० ९ । ६६)

'यह तो पशुधर्म है, जिसकी विद्वान् द्विजोंने सदा ही निन्दा की है । मनुष्योंमें इसका प्रचार वेन राजाके ही राज्यमें हुआ था ।'

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम् ।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः ॥
(मनु० ९ । ६८)

'उसके राज्यके पश्चात् जो पुरुष मोहके वश होकर विधवा स्त्री-को संतानके लिये नियुक्त करता है, साधुजन उसकी निन्दा करते हैं ।'

कुन्ती देवीकी कथा

विधवा स्त्रियोंको किस प्रकार अपना जीवन बिताना चाहिये, इसके लिये राजा पाण्डुकी धर्मपत्नी कुन्तीदेवीका जीवन आदर्श है । उसका अनुकरण करना चाहिये ।

कुन्तीदेवी यादवकुलमें उत्पन्न हुई थीं । ये शूरसेनजीकी पुत्री, वसुदेवजीकी बहिन तथा श्रीकृष्ण और बलदेवजीकी बूआ थीं । इनका नाम पृथा था । राजा कुन्तिभोजने इनको पुत्रीके रूपमें गोद ले लिया था, इसलिये ये 'कुन्ती' नामसे विख्यात हुईं । कुन्ती बड़ी ही पतिव्रता, सती-साध्वी, समता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, परोपकार आदि गुणोंसे सम्पन्न, दयालु, निर्भीक, सदाचारिणी, तपस्विनी, सत्यवादिनी और ईश्वरकी भक्त थीं । राजा पाण्डुके साथ इनका विवाह हुआ । राजा पाण्डुके एक दूसरी पत्नी भी थीं, उनका नाम माद्री था ।

मद्रदेशके राजाकी पुत्री होनेसे इनका 'माद्री' नाम विख्यात हुआ। राजा पाण्डुके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए; कुन्तीके गर्भसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेव।

जिस समय ये सब लोग वनमें रहते थे, उस समय एक दिन माद्रीके साथ सहवास करते हुए राजा पाण्डुकी ब्राह्मणके शापसे मृत्यु हो गयी। उस समय पतिव्रता कुन्तीदेवी अपने पतिके साथ सती होनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं और माद्रीसे बोलीं—'तुम इन बच्चोंका पालन-पोषण करो। मैं महाराजकी बड़ी पत्नी हूँ। इसलिये इनके साथ सती होनेका मुझे ही अधिकार है। मैं अब इनका अनुगमन करूँगी।' माद्रीने कहा—'बहिन! अपने धर्मात्मा पतिके साथ मैं ही सती होऊँगी। मैं अभी युवती हूँ। मुझे ही इनके साथ जाना चाहिये। तुम बड़ी हो बहिन! इसके लिये मुझे आज्ञा दे दो। मेरी प्रार्थना है, तुम मेरे पुत्रोंके साथ भी अपने ही पुत्रों-जैसा व्यवहार करना। मुझपर विशेष आसक्ति होनेके कारण ही पतिदेवकी मृत्यु हुई है, इसलिये भी मैं ही इनके साथ सती होऊँगी।' माद्री यों कहकर अपने पतिदेव-के साथ चितापर चढ़ गयीं और पतिलोकको सिधार गयीं।

इधर कुन्तीदेवी अपने तीनों पुत्र युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्रीके दोनों पुत्र नकुल और सहदेवको लेकर तपस्वियोंके साथ हस्तिनापुर चली गयीं। इन्होंने शास्त्रविधिके अनुसार अपने पतिकी सारी और्ध्वदैहिक क्रिया की। ये पाँचों पुत्रोंको समान समझती थीं, बल्कि अपने निजके पुत्रोंकी अपेक्षा भी नकुल और सहदेवसे अधिक प्यार किया करती थीं। छोटे होनेके कारण सहदेवके प्रति इनका

और अधिक स्नेह था। यह बात महाभारतमें स्थल-स्थलपर आयी है। महाभारतके पाठकोंको ज्ञात होगा, पाण्डवोंके वनगमनके समय कुन्तीदेवी द्रौपदीको आदेश देती हैं कि 'बेटी! तुम स्त्रियोंका धर्म जानती हो। इस घोर संकटमें पड़कर दुःख मत करना। तुम स्वयं शील और सदाचारसे सम्पन्न हो, इसलिये पतियों-के प्रति तुम्हारे कर्तव्यके सम्बन्धमें शिक्षा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम स्वयं परम साध्वी, गुणवती और दोनों कुलोंकी भूषण हो। निर्दोष द्रौपदी! तुमने कौरवोंको शाप देकर भस्म नहीं किया, यह उनका सौभाग्य और तुम्हारा सौजन्य है। तुम्हारा मार्ग निष्कण्टक हो। सुहाग अचल रहे। कुलीन स्त्रियाँ अचानक दुःख पड़नेपर घबराती नहीं। पातिव्रत्यधर्म सर्वदा तुम्हारी रक्षा करेगा और सब प्रकारसे तुम्हारा मङ्गल होगा। एक बात तुमसे कहनी है। तुम वनमें रहते समय मेरे प्यारे पुत्र सहदेवका विशेष ध्यान रखना। उसे कष्ट न होने पाये।' इससे यही सिद्ध होता है कि सहदेवके प्रति कुन्तीका सबसे अधिक स्नेह था।

इसी प्रकार आश्रमवासिकपर्वमें लिखा है—कार्तिक शुक्ला १५ को जब गान्धारी पतिके साथ वन जाने लगीं, उस समय कुन्तीदेवी भी गान्धारीका हाथ पकड़े साथ ही वनको चल दीं। वन जाते समय इन्होंने युधिष्ठिरको सहदेवकी सम्हाल सौंपते हुए कहा कि 'तुम सहदेवकी देख-रेख रखना।' इन सब बातोंसे भी यही सिद्ध होता है कि कुन्तीका माद्रीपुत्र सहदेवके प्रति विशेष स्नेह था। कुन्तीके इस आचरणसे सौतेली माताओंको यह शिक्षा ले चाहिये कि कुन्ती-

श्रीकृष्णके द्वारा कुन्तीका पाण्डवोंको संदेश

की भाँति अपनी सौतके पुत्रोंसे अपने पुत्रोंकी अपेक्षा भी विशेष लालन-पालनपूर्वक प्रेम करें ।

कुन्तीका वीरमातृत्व

कुन्ती आदर्श वीरमाता भी थीं । श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराजके समझानेपर भी जब दुर्योधनने संधि स्वीकार नहीं की—यहाँतक कि कुन्तीके पाँच पुत्रोंको पाँच गाँव देना भी दुर्योधनने अस्वीकार कर दिया, तब श्रीकृष्णजीने कुन्तीके पास आकर सारा वृत्तान्त कहा और पूछा कि 'अब पाण्डवोंके लिये आपकी क्या आज्ञा है ?' इसपर कुन्तीने कहा—'केशव ! तुम मेरी ओरसे राजा युधिष्ठिरसे कहना कि 'बेटा ! क्षत्रियोंको प्रजापति ब्रह्माने अपनी भुजाओंसे उत्पन्न किया है; अतः तुम्हें अपने बाहुबलसे ही अपना राज्य लेकर प्रजाका धर्मयुक्त पालन करना चाहिये । यही तुम्हारा धर्म है ।'

इस विषयमें विदुला नामकी विधवा क्षत्राणी और उसके पुत्रका संवाद आदर्श है । विदुला बड़ी यशस्विनी, तेज स्वभाववाली, कुलीना, संयमशीला और दीर्घदर्शिनी थी । राजसभाओंमें उसकी अच्छी ख्याति थी और शास्त्रका भी उसे अच्छा ज्ञान था । एक समय उसका अपना पुत्र सिन्धुराजसे परास्त होकर बड़ी दीन दशामें पड़ गया । उस समय विदुलाने उसे फटकारते हुए कहा—'अरे ! प्राण रहते तू विजयसे निराश हो गया ? यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो युद्ध कर । तू अपने आत्माका निरादर न कर और अपने मनको स्वस्थ करके भयको त्याग दे । कायर ! खड़ा हो जा । प्राण जानेकी नौबत आ जाय तो भी मनुष्यको पराक्रम नहीं छोड़ना चाहिये । इस

समय तो तू इस प्रकार पड़ा है, जैसे कोई बिजलीका मारा हुआ मुर्दा हो। वीर पुरुष रणभूमिमें जाकर उच्च कोटिका मानवोचित पराक्रम दिखाकर अपने धर्मसे उऋण होता है। विद्वान् पुरुष फल मिले या न मिले इसके लिये चिन्ता नहीं करता; वह तो निरन्तर पुरुषार्थसाध्य कर्तव्यकर्म करता रहता है। तू या तो अपना पुरुषार्थ बढ़ाकर जय लाभ कर, नहीं तो वीरगतिको प्राप्त हो। इस प्रकार धर्मको पीठ दिखाकर किसलिये जी रहा है? अरे नपुंसक! इस तरह न्यायतः प्राप्त युद्ध न करनेसे तो तेरे इष्ट-पूर्त आदि कर्म और सुयश—सभी मिट्टीमें मिल जायँगे तथा तेरे भोगका साधन राज्य भी नष्ट हो जायगा; फिर तू किसलिये जी रहा है?'

पुत्रने कहा—'माँ! तुम वीरोंकी-सी बुद्धिवाली हो। तुम्हारा हृदय तो मानो लोहेका ही गढ़कर बनाया गया है। अहो! क्षत्रियों-का धर्म बड़ा ही कठिन है, जिसके कारण स्वयं तुम्हीं दूसरेकी माताके समान अथवा जैसे किसी दूसरेसे कह रही हो। इस प्रकार मुझे युद्धके लिये उत्साहित कर रही हो। मैं तो तुम्हारा एकलौता पुत्र हूँ। फिर भी तुम मुझसे ऐसी बात कह रही हो। जब तुम मुझीको नहीं देखोगी तो इस पृथ्वी, गहने, भोग और जीवनसे भी तुम्हें क्या सुख होगा? फिर तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पुत्र मैं तो संग्राममें काम आ जाऊँगा।'

माता बोली—'संजय! समझदारोंकी सब अवस्थाएँ धर्म या अर्थके लिये ही होती हैं। उनपर दृष्टि रखकर ही मैं तुझे युद्धके लिये उत्साहित कर रही हूँ। यह तेरे लिये कोई दर्शनीय कर्म करके
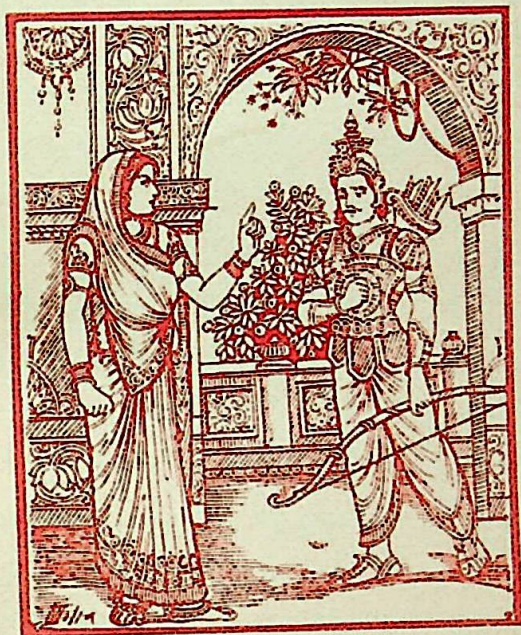
विदुलाका पुत्रको उद्बोधन

दिखानेका समय आया है । इस अवसरपर यदि तूने कुछ पराक्रम नहीं दिखाया तथा अपने शरीर या शत्रुके प्रति कड़ाईसे काम नहीं लिया तो तेरा बड़ा तिरस्कार होगा । अतः तू सत्पुरुषोंसे निन्दित तथा मूर्खोंसे सेवित मार्गको छोड़ दे । मुझे तो तू तभी प्रिय लगेगा; जब तेरा आचरण सत्पुरुषोंके योग्य होगा । जो अपना कर्तव्यकर्म नहीं करते, बल्कि निन्दनीय कर्मका आचरण करते हैं, उन अधम पुरुषोंको तो न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही । प्रजापतिने क्षत्रियोंको तो युद्ध करने और विजय प्राप्त करनेके लिये ही रचा है । युद्धमें जय या मृत्यु प्राप्त करनेसे क्षत्रिय इन्द्रलोक प्राप्त कर लेता है ।'

पुत्रने कहा—'माताजी ! यह ठीक है, किंतु तुम्हें अपने पुत्रके प्रति तो ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये । उसपर तुम्हें दयादृष्टि ही रखनी चाहिये ।' माता बोली—'बेटा ! जब तू सिन्धुदेशके सब योद्धाओंका संहार कर डालेगा, तभी मैं तेरी प्रशंसा करूँगी । मैं तो तेरी कठिनतासे प्राप्त होनेवाली विजय ही देखना चाहती हूँ ।'

पुत्रने कहा—'माताजी ! मेरे पास न तो खजाना है और न कोई सहायक ही है; फिर भी मेरी जय कैसे होगी ? इस विकट परिस्थितिका विचार करके मैं तो स्वयं ही राज्यकी आशा छोड़ बैठा हूँ—ठीक वैसे ही, जैसे पापी पुरुष स्वर्गप्राप्तिकी आशा नहीं रखता । यदि इस स्थितिमें भी तुम्हें कोई उपाय दिखायी देता हो तो मुझे बताओ; मैं जैसा तुम कहोगी, वैसा ही करूँगा ।'

माता बोली—'चाहे कैसी भी आपत्ति आये, राजाको उससे

घबराना नहीं चाहिये । कदाचित् घबराहट हो, तो भी घबराये हुएके समान आचरण नहीं करना चाहिये । मैं तेरे पुरुषार्थ और बुद्धिबलको जानना चाहती थी । इसीसे तेरा उत्साह बढ़ानेके लिये तुझसे मैंने ये प्रोत्साहित करनेवाली बातें कही हैं । यदि तुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं ठीक कह रही हूँ तो विजय प्राप्त करनेके लिये कमर कस-कर खड़ा हो जा । हमारे पास अभी बड़ा भारी खजाना है । उसे मैं ही जानती हूँ और किसीको उसका पता नहीं है । वह मैं तुझे सौंपती हूँ । संजय ! अभी तो तेरे सैकड़ों सुहृद् हैं । वे सभी सुख-दुःखको सहन करनेवाले और संग्राममें पीठ न दिखानेवाले हैं !'

राजा संजय तुच्छ बुद्धिका मनुष्य था, किंतु माताके ऐसे वचन सुनकर उसका मोह नष्ट हो गया । उसने कहा—'मेरा यह राज्य शत्रुरूप जलमें डूबा हुआ है, अब मुझे इसका उद्धार करना है; इसके लिये मैं रणभूमिमें प्राण दे दूँगा । अहा ! मुझे भावी वैभव-का दर्शन करानेवाली तुम-जैसी पथप्रदर्शिका माता मिली है, फिर मुझे क्या चिन्ता है । अब मैं शत्रुओंका दमन करने और जय प्राप्त करनेके लिये अपने बन्धुओंके सहित चढ़ाई करता हूँ ।'

कुन्ती बोलीं—श्रीकृष्ण ! माताके वाग्बाणोंसे बिंधकर चाबुक खाये हुए घोड़ेके समान उसने माताकी आज्ञाके अनुसार सब काम किये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त की । यह आख्यान बड़ा उत्साहवर्धक और तेजकी वृद्धि करनेवाला है । जब कोई राजा शत्रुसे पीड़ित होकर कष्ट पा रहा हो, उस समय मन्त्री उसे यह प्रसङ्ग सुनाये । इस इतिहासको सुननेसे गर्भवती स्त्री निश्चय ही वीर पुत्र उत्पन्न करती है । यदि क्षत्राणी इसे सुनती है तो उसकी कोखसे विद्याशूर, तपःशूर,

दानशूर, तेजस्वी, बलवान्, धैर्यवान्, अजेय, विजयी, दुष्टोंका दमन करनेवाला, साधुओंका रक्षक, धर्मात्मा और सच्चा शूरवीर पुत्र उत्पन्न होता है । केशव ! तुम अर्जुनसे कहना कि तेरा जन्म होनेके समय मुझे यह आकाशवाणी हुई थी कि 'कुन्ती ! तेरा यह पुत्र इन्द्रके समान बलवान् होगा। यह भीमसेनके साथ रहकर युद्धमें आये हुए सभी कौरवोंको जीत लेगा और अपने शत्रुओंको व्याकुल कर देगा । यह सारी पृथ्वीको अपने अधीन कर लेगा और इसका यश स्वर्गलोकतक फैल जायगा । श्रीकृष्णकी सहायतासे यह सारे कौरवोंको संग्राममें मारकर अपने खोये हुए पैतृक राज्यको प्राप्त करेगा और फिर अपने भाइयोंके साथ तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा ।' श्रीकृष्ण ! मेरी भी यही इच्छा है कि आकाशवाणीने जैसा कहा था, वैसा ही हो और यदि धर्म सत्य है तो ऐसा ही होगा भी । तुम अर्जुन और नित्य-कर्मतत्पर भीमसेनसे यही कहना कि 'क्षत्राणियाँ जिस कामके लिये पुत्र उत्पन्न करती हैं, उसे करनेका समय आ गया है ।'* और द्रौपदीसे कहना कि 'बेटी ! तू अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई है, तूने मेरे सभी पुत्रोंके साथ धर्मानुसार वर्ताव किया है, यह तेरे योग्य ही है ।' नकुल और सहदेवसे कहना कि 'तुम अपने प्राणोंकी भी बाजी लगाकर पराक्रम-से प्राप्त हुए भोगोंको भोगनेकी इच्छा करो ।' श्रीकृष्ण ! अब तुम जाओ, मेरे पुत्रोंकी रक्षा करते रहना ।

कुन्तीदेवीके उपर्युक्त आख्यानसे सभी माताओंको यह शिक्षा

---

* एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
(महा० उद्योग० १३७ । ९-१०)

लेनी चाहिये कि वे अपने पुत्रोंको वीर बनानेका प्रयत्न करें तथा वीर बननेकी उन्हें शिक्षा दें।

कुन्तीका परोपकार

कुन्तीदेवीका हृदय दयासे भरपूर था, वह वीरताके साथ ही परोपकारमें भी अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी हुई थीं। इस विषयमें महाभारतके आदिपर्वमें एक इतिहास आता है कि जिस समय कुन्तीदेवी तथा पाण्डव एकचक्रा नगरीमें एक ब्राह्मणके घरमें छिपकर रहते थे, उस समय एक दिनकी बात है, सब भाई भिक्षा लेनेके लिये गये हुए थे। केवल भीमसेन माता कुन्तीके पास थे। उसी दिन ब्राह्मणके घरमें करुण-क्रन्दन होने लगा। वे लोग बीच-बीचमें विलाप करते और रोते जाते। ब्राह्मण-परिवारकी रुदनध्वनि सुनकर कुन्तीका सौहार्दपूर्ण हृदय दयासे द्रवित हो गया। उन्होंने भीमसेनसे कहा—'बेटा! हमलोग ब्राह्मणके घरमें रहते हैं और ये हमारा बहुत सत्कार करते हैं। मैं प्रायः यह सोचा करती हूँ कि इस ब्राह्मणका हमें भी उपकार करना चाहिये। कृतज्ञता ही मनुष्यका जीवन है। जितना कोई अपना उपकार करे, उससे बढ़कर उसका उपकार करना चाहिये। अवश्य ही इस ब्राह्मणपर कोई विपत्ति आ पड़ी है। यदि हम इसकी सहायता कर सकें तो इसके ऋणसे उऋण हो जायँ।' भीमसेनने कहा—'माँ! तुम ब्राह्मणके दुःखके कारणका पता लगाओ। मैं उनके लिये कठिन-से-कठिन काम भी करूँगा।' कुन्ती जल्दीसे ब्राह्मणके घरके भीतर गयीं।

उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ मुँह नीचा किये बैठा है और अपनी धर्मपत्नीसे कह रहा है—'धिक्कार

है मेरे इस जीवनको; क्योंकि यह सारहीन, व्यर्थ, दुखी और पराधीन है। जीव धर्म, अर्थ और कामका भोग करना चाहता है; किंतु इस आपत्तिसे छूटनेका न तो कोई उपाय दीखता है और न मैं अपनी पत्नी, लड़की और पुत्रके साथ भाग ही सकता हूँ। तुम मेरी जितेन्द्रिय और धर्मात्मा सहचरी हो। देवताओंने तुम्हें मेरी सखी और सहारा बना दिया हैं। मैंने मन्त्र पढ़कर तुमसे विवाह किया है। तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो। तुम सती-साध्वी और मेरी हितैषिणी हो। राक्षससे अपने जीवनकी रक्षाके लिये मैं तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता।'

पतिकी बात सुनकर ब्राह्मणीने कहा—'स्वामिन्! आप साधारण मनुष्यके समान शोक क्यों कर रहे हैं? एक-न-एक दिन सभी मनुष्यों-को मरना पड़ता है। फिर इस अवश्यम्भावी बातके लिये शोक क्यों किया जाय। पत्नी, पुत्र अथवा पुत्री—सब अपने लिये ही होते हैं। आप विवेकके बलसे चिन्ता छोड़िये। मैं स्वयं उसके पास जाऊँगी। पत्नीके लिये सबसे बढ़कर यही सनातन कर्तव्य है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिका हित करे। मेरे इस कामसे आप सुखी होंगे और मुझे भी परलोकमें सुख तथा इस लोकमें यश मिलेगा। मैं आपके धर्म और लाभकी बात कहती हूँ। जिस उद्देश्य-से विवाह किया जाता है, वह अब पूरा हो चुका। आपके मेरे गर्भसे एक पुत्र और एक पुत्री है। आप इन बच्चोंका जैसा पालन-पोषण कर सकते हैं वैसा मैं नहीं कर सकती। आप न रहेंगे तो मेरे प्राणेश्वर! मेरे जीवनसर्वस्व! मैं कैसे रहूँगी और फिर इन बच्चोंकी क्या दशा होगी? यदि मैं अनाथ और विधवा होकर जीवित भी रहूँ

तो इन बच्चोंको कैसे रक्खूँगी ? इस कन्याको मर्यादामें रखना और बच्चेको सद्गुणी बनाना मुझसे कैसे हो सकेगा ? आपके वियोगमें मैं न रहूँगी और आपके तथा मेरे बिना इन बच्चोंका नाश हो जायगा। आपके जानेसे हम चारोंका विनाश हो जायगा, इसलिये आप मुझे भेज दीजिये। स्त्रीके लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वे अपने पतिके पहले ही परलोकवासिनी हो जायँ। मेरा जीवन आपके लिये निछावर है। स्त्रीके लिये यज्ञ, तप, नियम और दानसे भी बढ़कर है अपने पतिका प्रिय और हित। इस लोकमें स्त्री, पुत्र, मित्र और धन आदिका संग्रह आपत्तिसे रक्षा करनेके लिये किया जाता है। आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, धन खोकर भी पत्नीकी रक्षा करे तथा पत्नी और धन दोनोंको खोकर भी आत्मकल्याणका सम्पादन करे। यह भी सम्भव है कि स्त्रीको अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे न मारे। मैंने अच्छे पदार्थ भोग लिये, धर्म-कर्म कर लिये, पुत्र भी हो चुका; अब मेरे मरनेमें भला, दुःख ही क्या है ? मेरे मर जानेपर आप तो दूसरा विवाह भी कर सकते हैं; क्योंकि पुरुषके लिये अधिक विवाह अधर्म नहीं है और स्त्रीके लिये तो महान् अधर्म है। यह सब सोच-विचारकर आप मेरी बात मानिये और इन बच्चोंकी रक्षाके लिये आप स्वयं रह जाइये और मुझे उस राक्षसके पास भेजिये।' स्त्रीके यों कहनेपर ब्राह्मणने उसे अपने हृदयसे लगा लिया। उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे।

माँ-बापकी दुःखभरी बात सुनकर कन्या बोली—'आप दोनों दुःखार्त होकर क्यों अनाथके समान रो रहे हैं। आपके परलोकवासी हो जानेपर मेरा यह प्यारा छोटा भाई नहीं बचेगा। माँ-बाप और

भाईकी मृत्युसे आपकी वंशपरम्पराका ही उच्छेद हो जायगा। जब कोई नहीं रहेंगे तो मैं भी तो नहीं रह सकूँगी। आपलोगोंके रहनेसे सबका कल्याण होगा। मैं ही राक्षसके पास जाकर इस वंशकी रक्षा करूँगी। इससे मेरे लोक-परलोक दोनों बनेंगे।' कन्याकी यह बात सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे। कन्या भी बिना रोये न रह सकी। सबको रोते देखकर नन्हा-सा शिशु मिठासभरी तोतली वाणीसे कहने लगा—'पिताजी ! माताजी ! बहिन ! मत रोओ।' फिर उसने एक तिनका उठाकर हँसते हुए कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा।' बच्चेकी इस बातसे उस दुःखकी घड़ीमें भी माता-पिताके मुखपर प्रसन्नताकी एक लहर आ गयी।

कुन्ती अवसर देखकर उन लोगोंके पास चली गयी और बोली—'ब्राह्मणदेवता ! आपके दुःखका क्या कारण है ? उसे जानकर यदि हो सकेगा तो मैं मिटानेकी चेष्टा करूँगी।' ब्राह्मणने कहा—'तपस्विनी ! आपकी बात सज्जनोंके अनुरूप है; परंतु मेरा दुःख मनुष्य नहीं मिटा सकता। इस नगरके पास ही एक बक नामका राक्षस रहता है। उस बलवान् राक्षसके लिये एक गाड़ी अन्न और दो भैंसे प्रतिदिन दिये जाते हैं। जो मनुष्य लेकर जाता है, उसे भी वह खा जाता है। प्रत्येक गृहस्थको यह काम करना पड़ता है। परंतु इसकी बारी बहुत वर्षोंके बाद आती है। जो उससे छूटनेका यत्न करते हैं, वह उनके सारे कुटुम्बको खा जाता है। यहाँका राजा यहाँसे थोड़ी दूर वेत्रकीयगृह नामक स्थानमें रहता है। वह अन्यायी है और इस विपत्तिसे प्रजाकी रक्षा नहीं करता। आज

हमारी बारी आ गयी है। मुझे उसके भोजनके लिये अन्न और एक मनुष्य देना पड़ेगा।'

कुन्तीने कहा—'ब्राह्मणदेवता! आप न डरें और न शोक करें; उससे छुटकारेका उपाय मैं समझ गयी। आपके तो एक ही पुत्र और एक ही कन्या है। आप दोनोंमेंसे किसीका जाना भी मुझे ठीक नहीं लगता। मेरे पाँच लड़के हैं, उनमेंसे एक इस पापी राक्षसका भोजन लेकर चला जायगा।' ब्राह्मण बोला—'हरे-हरे! मैं अपने जीवनके लिये अतिथिकी हत्या नहीं कर सकता। अवश्य ही आप बड़ी कुलीन और धर्मात्मा हैं, तभी तो ब्राह्मणके लिये अपने पुत्रका भी त्याग करना चाहती हैं। मुझे स्वयं कल्याणकी बात सोचनी चाहिये। आत्मवध और अतिथिवध—इन दोनोंमें मुझे तो आत्मवध ही श्रेयस्कर जान पड़ता है। आपत्तिकालमें भी निन्दित और क्रूर कर्म नहीं करना चाहिये। मैं स्वयं अपनी पत्नीके साथ मर जाऊँ, यह श्रेष्ठ है।'

कुन्तीने कहा—'ब्रह्मन्! मेरा भी यह दृढ़ निश्चय है कि ब्राह्मणकी रक्षा करनी चाहिये। मैं भी अपने पुत्रका अनिष्ट नहीं चाहती; परंतु बात यह है कि राक्षस मेरे बलवान् और तेजस्वी पुत्रका अनिष्ट नहीं कर सकता। वह राक्षसको भोजन पहुँचाकर भी अपनेको छुड़ा लेगा—ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है।'

कुन्तीकी बातसे ब्राह्मण-परिवारको बड़ी प्रसन्नता हुई। कुन्तीने ब्राह्मणके साथ जाकर भीमसेनसे कहा—'तुम यह काम कर दो।' भीमसेनने बड़ी प्रसन्नताके साथ माताकी बात स्वीकार कर ली।

जिस समय भीमसेनने वह काम करनेकी प्रतिज्ञा की, उसी समय युधिष्ठिर आदि भिक्षा लेकर लौटे। युधिष्ठिरने भीमसेनके आकारसे ही सब कुछ समझ लिया। उन्होंने एकान्तमें बैठकर अपनी मातासे पूछा—'माँ! भीमसेन क्या करना चाहते हैं? यह उनकी स्वतन्त्र इच्छा है या आपकी आज्ञा?' कुन्ती बोलीं—'मेरी आज्ञा!' युधिष्ठिरने कहा—'माँ! आपने दूसरेके लिये अपने पुत्रको संकटमें डालकर बड़े साहसका काम किया है।' कुन्ती बोलीं—'बेटा! भीमसेनकी चिन्ता मत करो। मैंने यह कार्य विचारकर ही किया है। हमलोग यहाँ इस ब्राह्मणके घरमें आरामसे रहते हैं। उससे उऋण होनेके लिये ही मैंने ऐसा सोचा है। मनुष्य-जीवनकी सफलता इसीमें है कि वह कभी उपकारीके उपकारको न भूले। उसके उपकारसे भी बढ़कर उसका उपकार करे। भीमसेनके विषयमें मेरा विश्वास है कि इसे राक्षस नहीं मार सकेगा; क्योंकि पैदा होते ही यह मेरी गोदसे गिरा था, तब इसके शरीरसे टकराकर चट्टान चूर-चूर हो गयी थी। अतः इसे कोई भय नहीं है। इससे प्रत्युपकार तो होगा ही, धर्मलाभ भी होगा।' युधिष्ठिरने कहा—'माता! आपने जो कुछ समझ-बूझकर किया है, वह सब उचित है। अवश्य ही भीमसेन राक्षसको मार डालेगा; क्योंकि आपके हृदयमें ब्राह्मणकी रक्षाके लिये विशुद्ध धर्मभाव है। किंतु ब्राह्मणसे यह अवश्य कह देना चाहिये कि नगरवासियोंको यह बात मालूम न होने पाये।'

तदनन्तर भीमसेन बकासुरके लिये भोजन लेकर चला गया। वहाँ जाकर उसने बकासुरके साथ युद्ध करके उसे मार डाला। तब बकासुरके कुटुम्बी अन्य राक्षस भयके मारे भाग गये। भीमसेनने

लौटकर युधिष्ठिर तथा ब्राह्मणको वह सारी कथा कह सुनायी।

इससे विधवा माताओं तथा अन्य सब लोगोंको भी यह शिक्षा लेनी चाहिये कि दूसरोंकी आपत्तिको अपने ऊपर लेकर उनका उपकार करें।

कुन्तीकी सत्यप्रियता

कुन्तीमें सत्यनिष्ठा भी अलौकिक थी। वे जो अपने मुँहसे कह दिया करती थीं, उसको अक्षरशः सत्य करनेकी चेष्टा किया करती थीं। स्वयंवरमें द्रौपदीको जीतकर अर्जुन और भीमसेनने द्रौपदीके साथ कुम्हारके घरमें प्रवेश करके अपनी मातासे कहा—'माँ! आज हमलोग यह भिक्षा लाये हैं।' माता कुन्ती उस समय घरके भीतर थीं। उन्होंने अपने पुत्रों और भिक्षाको देखे बिना ही कह दिया—'बेटा! पाँचों भाई मिलकर उसका भोग करो।' बाहर निकलकर जब कुन्तीने देखा कि यह तो साधारण भिक्षा नहीं, राजकुमारी है, तब तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे कहने लगीं—'हाय! मैंने क्या किया?' वे तुरंत द्रौपदीका हाथ पकड़कर युधिष्ठिरके पास ले गयीं और बोलीं—'बेटा! जब भीमसेन और अर्जुन इस राजकुमारी-को लेकर भीतर आये, तब मैंने बिना देखे ही कह दिया कि तुम सब लोग मिलकर इसका भोग करो। मैंने आजतक कभी कोई झूठी बात नहीं कही है। अब तुम कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे मेरी बात सत्य हो।'

युधिष्ठिरने माता कुन्तीकी आज्ञा समझकर ऐसा ही करनेका निश्चय किया और माताको आश्वासन दिया तथा अर्जुनको बुलाकर

कहा—'भाई ! तुमने मर्यादाके अनुसार द्रौपदीको प्राप्त किया है, अब विधिपूर्वक अग्नि प्रज्वलित करके उसका पाणिग्रहण करो ।' अर्जुनने कहा—'भाईजी ! आप मुझे अधर्मका भागी न बनाइये । सत्पुरुषोंने कभी ऐसा आचरण नहीं किया है । पहले आपका, तब भीमसेनका, तदनन्तर मेरा और मेरे बाद नकुल और सहदेवका विवाह हो । इसलिये इस राजकुमारीका विवाह तो आपके ही साथ होना चाहिये । साथ ही यह भी निवेदन है कि आप अपनी बुद्धिसे धर्म, यश और हितके लिये जैसा करना उचित समझें, वैसी आज्ञा दें । हम लोग आपके आज्ञाकारी हैं ।'

युधिष्ठिरने माता कुन्तीकी आज्ञाका स्मरण करके निश्चयपूर्वक कहा—'द्रौपदी हम सब भाइयोंकी पत्नी होगी ।' इससे सभी भाइयों-को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

तत्पश्चात् पाण्डवोंने राजा द्रुपदके पास जाकर पाँचोंके साथ द्रौपदीका विवाह करनेका प्रस्ताव किया; किंतु राजा द्रुपदने उसका न्याययुक्त विरोध किया । तब श्रीवेदव्यासजीने प्रकट होकर राजा द्रुपदको एकान्तमें द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा सुनायी और उसे दिव्य दृष्टि देकर सब बातें प्रत्यक्ष दिखला दीं तथा पाँचों पाण्डवोंके साथ द्रौपदीका विवाह करनेकी आज्ञा दी । इसपर राजाने पाँचों पाण्डवोंके साथ द्रौपदीका विवाह कर दिया ।

कुन्तीकी भक्ति

कुन्ती भगवान्‌की उच्चकोटिकी भक्त भी थीं । भागवतके प्रथम स्कन्धके आठवें अध्यायमें कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णकी बड़े विस्तारसे

स्तुति की है (जो विस्तारसे देखना चाहें, वे उसे वहाँ देखें)। उस समय कुन्तीने स्तुति करते हुए क्या ही सुन्दर कहा है—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥
(१ । ८ । २५)

'जगद्गुरो ! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपका दर्शन हुआ करता है और आपका दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता।'

इसलिये विधवा माता-बहिनोंको कुन्तीदेवीको आदर्श मानकर भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान, स्तुति, प्रार्थना आदिद्वारा भगवान्‌की भक्ति करनी चाहिये।

जबतक दुर्योधन जीता रहा, उसने पाण्डवोंको और कुन्तीको सदा ही अनुचित दुःख दिया। राजा धृतराष्ट्रकी सम्मतिसे दुर्योधनने पाण्डवोंको लाक्षाभवनमें भेजकर आग लगवाना आदि अनेक अत्याचार किये, किंतु इन सब अत्याचारोंको भुलाकर कुन्तीदेवीने राजमाता होते हुए भी अपनी जेठानी गान्धारी और जेठ धृतराष्ट्रकी अपने सास-ससुरके समान सेवा की। इस विषयमें विशेष देखना चाहें तो महाभारत आश्रमवासिकपर्वमें देखिये। यहाँ संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया जाता है।

कुन्तीका त्याग

जब कुन्तीदेवी सास-ससुरके समान गान्धारी और धृतराष्ट्रके साथ उनकी सेवा और तपस्या करने वनमें जाने लगीं, तब उन्होंने
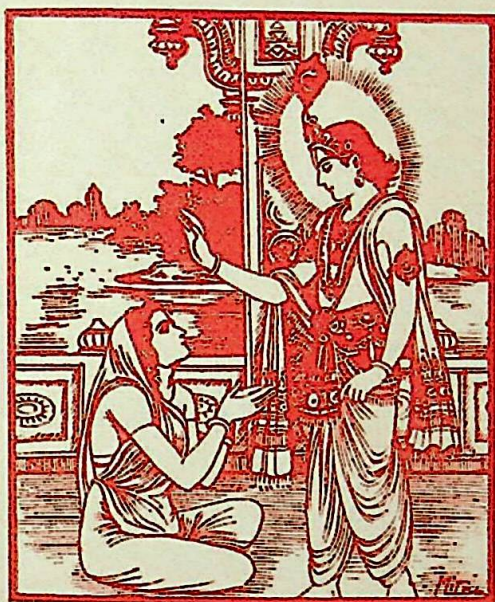
कुन्तीकी प्रार्थना

राजा युधिष्ठिरसे कहा—'भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव तथा द्रौपदीका ध्यान रखना । अब मैं वनमें गान्धारीके साथ रहकर तपस्या करूँगी और अपने इन सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें लगी रहूँगी।' कुन्तीके यों कहनेपर भाइयोंसहित युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ। वे बोले—'माँ! आपने अपने मनमें यह क्या ठान लिया ? आपको ऐसा नहीं करना चाहिये । हमलोगोंपर कृपा करके लौट चलिये । पहले आपने ही विदुलाके वचनोंसे हमें क्षत्रियधर्मके पालनके लिये उत्साहित किया था । पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके मुखसे आपका विचार सुनकर ही मैंने राजाओंका संहार करके इस राज्यको हस्तगत किया है ।'

अपने धर्मजीवन पुत्रके ये अश्रुगद्गद वचन सुनकर कुन्तीके नेत्रोंमें भी आँसू उमड़ आये; तो भी वे रुकी नहीं, आगे बढ़ती ही गयीं । तब भीमसेनने कहा—'माताजी ! जब पुत्रोंके जीते हुए इस राज्यको भोगनेका अवसर आया और राजधर्मोंके पालनकी सुविधा प्राप्त हुई, तब आपकी बुद्धि कैसे बदल गयी ? क्या कारण है कि आप हमें छोड़कर वनको जाना चाहती हैं ? जब वनमें ही रहना था तो बालक-अवस्थासे हमलोगोंको और दुःखशोकमें डूबे हुए इन माद्रीकुमारोंको आप वनसे नगरमें क्यों लायीं ? माँ ! हमलोगोंपर प्रसन्न होइये और बलपूर्वक प्राप्त की हुई राजा युधिष्ठिरकी राज्यलक्ष्मीका उपभोग कीजिये ।' यह सुनकर भी कुन्ती वनवासके निश्चयसे विचलित न हुईं । उनके पुत्र नाना प्रकारसे विलाप करते रहे, किंतु उन्होंने उनकी बात नहीं मानी । सासको इस प्रकार वनवासके लिये जाते देख द्रौपदीका भी मुँह उदास हो गया और वह सुभद्राके साथ रोती हुई कुन्तीके पीछे-पीछे जाने लगी । कुन्तीकी

बुद्धि बड़ी ही उदात्त थी। वे वनवासका निश्चय कर चुकी थीं, इसलिये अपने रोते हुए पुत्रोंकी ओर वारंवार देखकर भी वे टस-से-मस नहीं हुई—आगे बढ़ती ही चली गयीं। पाण्डव भी अपने सेवकों और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ उनके पीछे-पीछे जाने लगे। यह देख कुन्तीदेवी आँसू पोंछकर अपने पुत्रोंसे बोलीं—'पुत्रो! तुम्हारा कहना ठीक है। पहले तुम नाना प्रकारके कष्ट उठा रहे थे, इसलिये मैंने तुम्हें युद्धके लिये उत्साहित किया था। मैं अपने स्वामी महाराज पाण्डुके विशाल राज्यका सुख भोग चुकी हूँ। बड़े-बड़े दान और विधिवत् सोमपान भी कर चुकी हूँ। मैंने राज्यभोगके लिये श्रीकृष्णको प्रेरित नहीं किया था। विदुलाके वचन सुनाकर जो उनके द्वारा तुम्हारे पास संदेश भेजा था, वह सब तुम्हारी रक्षाके उद्देश्यसे ही किया गया था। बेटा युधिष्ठिर! अब मैं तपस्याके द्वारा अपने पतिके पवित्र लोकमें जाना चाहती हूँ, अतः वनवासी सास-ससुरकी सेवा करके तपके द्वारा इस शरीरको सुखाऊँगी। तुम भीमसेन आदिके साथ लौट जाओ। मैं आशीर्वाद देती हूँ, तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी रहे और तुम्हारा हृदय अत्यन्त उदार हो।'

कुन्तीकी बात सुनकर पाण्डव बहुत लज्जित हुए। जब वे उन्हें लौटानेमें सफल न हो सके, तब राजा धृतराष्ट्रकी प्रदक्षिणा एवं उन्हें प्रणाम करके द्रौपदीसमेत दुःखित मनसे नगरको लौट चले। तदनन्तर धृतराष्ट्रने गान्धारी और विदुरका सहारा लेकर कहा—'गान्धारी! युधिष्ठिरकी माता कुन्तीको लौटा दो। यह राज्यमें रहकर भी बड़े-बड़े दान और तप कर सकती है। बहू कुन्तीकी सेवा-शुश्रूषासे मैं बहुत संतुष्ट हूँ, इसलिये अब तुम इसे घर लौट जानेकी आज्ञा दो।'

राजाके यों कहनेपर गान्धारीदेवीने कुन्तीसे उनका संदेश सुना दिया और अपनी ओरसे भी उन्हें लौटनेके लिये विशेष आग्रहपूर्वक कहा; किंतु धर्मपरायणा सती कुन्तीदेवी वनवासके लिये दृढ़ निश्चय कर चुकी थीं, अतः गान्धारी उन्हें किसी प्रकार लौटा न सकीं।

जब पाण्डवोंको तपोवनसे लौटकर आये दो वर्ष व्यतीत हो गये; तब एक दिन देवर्षि नारद राजा युधिष्ठिरके पास आये। युधिष्ठिरने उनका सत्कार करके कहा—'भगवन्! गान्धारी, कुन्ती, संजय और मेरे ताऊ महाराज धृतराष्ट्र इस समय कैसे रहते हैं? उनके सम्बन्धमें मैं सुनना चाहता हूँ।' नारदजी बोले—'मैंने तपोवनमें जो कुछ देखा-सुना है, वह सब बतलाता हूँ। जब तुम लोग वनसे लौट आये तब तुम्हारे ज्येष्ठ पिता गान्धारी और कुन्तीके साथ हरिद्वारको चले गये। वहाँ पहुँचकर तुम्हारे ज्येष्ठ पिताने तीव्र तपस्या आरम्भ की। वे मुँहमें पत्थरका टुकड़ा रखकर वायुका आहार करते और मौन रहते थे। उस वनमें जितने ऋषि थे, सब उनका विशेष रूपसे सम्मान करने लगे। उनके शरीरमें चमड़ेसे ढकी हुई हड्डियोंका ढाँचामात्र रह गया। इस प्रकार उन्होंने छः महीने व्यतीत किये। गान्धारी केवल जल पीकर रहती थीं। कुन्तीदेवी एक महीनेतक उपवास करके एक दिन भोजन करती थीं और संजय छठे समय अर्थात् दो दिन उपवास करके तीसरे दिन संध्याको आहार ग्रहण करते थे। गान्धारी और कुन्ती—दोनों देवियाँ साथ-साथ रहकर धृतराष्ट्रके पीछे-पीछे फिरती थीं। संजय भी उन्हींका अनुसरण करते थे। ऊँची-नीची भूमि आनेपर संजय ही धृतराष्ट्रको निभाते थे और कुन्तीदेवी गान्धारीके लिये नेत्र बनी हुई थीं।

'एक दिनकी बात है, राजा धृतराष्ट्र गङ्गाके कछारमें घूम रहे थे। इसी समय बड़े जोरकी हवा चली जिससे उस वनमें भयंकर दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी। आगको निकट आते देख राजा धृतराष्ट्रने संजयसे कहा—'संजय! हमलोग तो अब यहीं अपनेको अग्निमें होमकर परम गति प्राप्त करेंगे। हमलोग स्वेच्छासे गृहस्थाश्रम-का परित्याग करके आये हैं। जल, अग्नि या वायुके संयोगसे अथवा उपवास करके प्राण त्यागना तपस्वियोंके लिये प्रशंसनीय माना गया है। इसलिये तुम अब यहाँसे शीघ्र चले जाओ।' यह कहकर राजा धृतराष्ट्रने अपने मनको एकाग्र किया और गान्धारी तथा कुन्तीके साथ वे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। उन्हें इस अवस्थामें देख संजयने उनकी परिक्रमा की और कहा—'महाराज! अब अपनेको योगयुक्त कीजिये।' राजाने उनके कथनानुसार समाधि लगा ली। वे इन्द्रियों-को रोककर काष्ठकी भाँति निश्चेष्ट हो गये। इसके बाद गान्धारी, तुम्हारी माता कुन्ती तथा तुम्हारे पितृव्य राजा धृतराष्ट्र—ये तीनों ही दावाग्निमें जलकर भस्म हो गये; किंतु संजयके प्राण बचे हुए हैं। वे यहाँसे हिमालयपर्वतपर चले गये। इस प्रकार महामना धृतराष्ट्र और तुम्हारी दोनों माताओंकी मृत्यु हुई है।'

कुन्तीदेवीके इस आदर्श चरित्रको ध्यानमें रखकर विधवा माता-बहिनोंको उसके अनुसार आचरण करना चाहिये तथा अपने सास-ससुर आदि बड़ोंकी सेवा, तपस्या और भजन-ध्यानके लिये प्राणपर्यन्त तत्परतापूर्वक चेष्टा करनी चाहिये।

विधवा बहिनोंके कर्तव्य

विधवा स्त्रियोंको दिनमें एक बार भोजन करना चाहिये।

भूमिपर शयन करना, सफेद सादा वस्त्र धारण करना और यथायोग्य यथासाध्य उपवास (निराहार) व्रतादि करने चाहिये। विधवा स्त्री कभी उबटन न लगाये, पान न खाय, सुगन्धित पदार्थोंका सेवन न करे, केशोंको न गूँथे, रँगा हुआ वस्त्र और आभूषण न पहने तथा आँखोंमें अञ्जन न लगाये, सदा काम-क्रोधको जीते, इन्द्रियोंको वशमें रक्खे, किसीसे लड़ाई-झगड़ा, वाद-विवाद न करे तथा सदा आलस्य छोड़कर अपने घरका काम-काज करे एवं अपने कर्तव्यका पालन करती हुई परमेश्वरकी भक्तिमें संलग्न रहे। शास्त्रमें कहा है—

विधवानां तु नारीणां ब्रह्मचर्यं सदैव हि।
न गृह्णीयाद् रक्तवर्णं न खट्वां मैथुनं न च॥
(बृहद्धर्मपुराण उत्तर० ८। ११)

'विधवा स्त्रियोंको सदा ही ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। वे न तो रँगा हुआ वस्त्र पहनें, न खाटपर सोयें और मैथुन तो कभी करें ही नहीं।'

यौवनं विविधा भूषा चारुकेशादिधारणम्।
देहशोभा च नारीणां विधवानां न शोभते॥
(बृहद्धर्मपुराण पूर्व० ४। ३३। ३४)

'विधवा स्त्रियोंका यौवन, नाना प्रकारकी वेष-भूषा, केशोंको सुन्दरतासे गूँथकर धारण करना तथा शरीरकी शोभा—ये सभी शोभा नहीं पाते।'

ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
संन्यासिनां च गोमांससुरातुल्यं श्रुतौ श्रुतम्॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३। १००)

'वेदमें सुना गया है कि विधवा स्त्रियोंके लिये, यतियों (वानप्रस्थों) के लिये, संन्यासियोंके लिये और ब्रह्मचारियोंके लिये पान खाना गोमांस और मदिराके तुल्य है ।'

केशवेणी जटारूपं न क्षौरं तीर्थकं विना ।
तैलाभ्यङ्गं न कुर्वीत न हि पश्यति दर्पणम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १०४)

'विधवा स्त्रीको चाहिये कि बालोंको वेणीके रूपमें सजाये नहीं, जटा-जूट करके बाँध ले; उनको तीर्थस्थलके अतिरिक्त कटाये नहीं, शरीरमें तेल न लगाये तथा दर्पणमें अपना मुख न देखे ।'

मुखं च परपुंसां च यात्रानृत्यं महोत्सवम् ।
नर्तनं गायनं चैव सुवेषं पुरुषं शुभम् ॥
(ब्रह्मवैवर्त० श्रीकृष्ण० ८३ । १०५)

'दूसरे पुरुषोंका मुख न देखे, यात्रा-नृत्यों एवं अन्य प्रकारके नृत्योंको तथा महोत्सवोंको न देखे, गाना न सुने और सुसज्जित सुन्दर पुरुषकी ओर तो कदापि न देखे ।'

इसलिये विधवा स्त्रियोंको अपना जीवन बहुत सीधा-सादा, तपोमय बनाना चाहिये । सभी प्रकारके ऐश-आराम, भोग, स्वाद, शौकका त्याग करना चाहिये तथा वैराग्यपूर्वक रहकर अपना जीवन भगवान्‌की भक्तिमें लगाना चाहिये ।

विधवा माता-बहिनोंसे यह भी प्रार्थना है कि शास्त्रोंमें जो विधवाओंके धर्म (कर्तव्य) बतलाये हैं, उनका स्वाध्याय तथा अनुशीलन करें । स्वयं पढ़ी हुई न हों तो अपने सदाचारी पिता,

भाई, पुत्र, जेठ, ससुर आदिके द्वारा तथा त्यागी विरक्त शास्त्रज्ञ महापुरुषोंके द्वारा सुनें और यथाशक्ति उनको काममें लायें, किंतु पाखण्डी, धूर्त, बनावटी महात्माओंके चंगुलमें न फँसें। जो कञ्चन और कामिनीके दास हैं, उनके तो पास भी न जायँ। स्त्रियोंको किसी भी पुरुषको, चाहे वह महात्मा ही क्यों न हो, गुरु नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि स्त्रियोंका तो पति ही गुरु है और पतिके मरनेपर परम-पति परमेश्वर जगद्गुरु हैं। उन्हींकी भक्ति करें तथा शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार अपने धर्मका पालन करते हुए शरीर, संसार और भोगोंको क्षणभङ्गुर, नाशवान् और दुःखरूप समझकर उनका तिनकेके समान त्याग कर दें। इस प्रकार अपना तपोमय जीवन बनाकर ईश्वरके शरण हो जायँ, जिससे इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त हो एवं भारी आपत्ति पड़नेपर भी अपने धर्मका कभी त्याग न करें; क्योंकि मरनेपर मनुष्य-के साथ एक धर्म ही जाता है। मनुष्य-जन्म पाकर अपने आत्माका कल्याण करना ही मनुष्यका परम कर्तव्य है।

यह मनुष्य शरीर बहुत ही दुर्लभ है। भगवान्‌की कृपासे या बड़े भारी भाग्यसे यह मिलता है। श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥
बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

किंतु यह मानव-शरीर अनित्य और क्षणिक है। मृत्यु कब आकर अचानक मार देगी, इसका भी पता नहीं, अतः जिससे अपने आत्माका सुधार होकर उद्धार हो, उसी कामको शीघ्रातिशीघ्र

करना चाहिये। इस शरीर और संसारके भोगोंमें जो सुख प्रतीत होता है, वह धोखा है। वास्तवमें इनमें सुख नहीं है। इसलिये संसारी भोगोंको त्याग कर निरन्तर भगवान्‌का भजन करना चाहिये। भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥

(९। ३३)

'इसलिये तू सुखरहित और क्षणभङ्गुर इस मनुष्य-शरीरको प्राप्त होकर निरन्तर मेरा ही भजन कर।'

श्रीभगवान्‌ने भजनका प्रकार और फल इस प्रकार बतलाया है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(९। ३४)

'मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करनेवाला हो, मुझको प्रणाम कर। इस प्रकार आत्माको मुझमें नियुक्त करके मेरे परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।'

68

सत्यभामाको द्रौपदीकी सलाह

'साध्वी! सांसारिक भोगरूप सुखके द्वारा सुख कभी नहीं मिल सकता, सुखप्राप्तिका साधन तो दुःखको सहन करना है। अतः तुम सुहृदता, प्रेम, परिचर्या, कार्यकुशलता और तरह-तरहके पुष्प-चन्दनादिसे (अपने पति) श्रीकृष्णकी सेवा करो तथा जिस प्रकार वे समझें कि मैं इसे प्यारा हूँ, तुम वैसा ही कार्य करो।'

—इसी पुस्तकसे